वार्षिक राजभाषा पत्रिका

सिद्धार्थः सरसों संदेश

अंक 12, वर्ष 2021

भा.कृ.अनुप. – सरसों अनुसंधान निदेशालय

सेवर, भरतपुर – 321 303 (राजस्थान)

(आई.एस.ओ. 9001 : 2008 प्रमाणित संस्थान)

वार्षिक राजभाषा पत्रिका

सिद्धार्थ : सरसों संदेश

अंक 12 वर्ष 2021

प्रधान सम्पादक
डॉ. प्रमोद कुमार राय

सम्पादक मण्डल
डॉ. मोहन लाल दौतानियाँ
डॉ. प्रियामेधा
डॉ. प्रशांत यादव
डॉ. हरवीर सिंह

छाया चित्र
राकेश गोयल

प्रकाशक
निदेशक
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय
सेवर, भरतपुर–321 303, राजस्थान
दूरभाष : 05644–260379, 2604
फैक्स : 05644–260565
वेबसाइट : www.drmr.res.in
ई–मेल : director.drmr@icar.gov.in

मुद्रण : प्रीमियर प्रिन्टिंग प्रेस, 12, रामनगर, हवा सड़क जयपुर–302 019, मो. : 9783855551

इस पत्रिका के लेखों में दिये गये विचार लेखकों के हैं। संपादक मण्डल उनके विचारों के लिए किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

संपादकीय

सरसों अनुसंधान निदेशालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका सिद्धार्थः सरसों संदेश का उद्देश्य है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहायकों को हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के लिए प्रेरित कर कार्यालय के कार्य हिन्दी में करने के लिए प्रेरित करना है। किसी भी पत्रिका का संपादक मण्डल होता है इसलिए इस पत्रिका प्रकाशन के लिए हर वर्ष कुछ नये सदस्यों को संपादक मण्डल में जोड़ा जाता है ताकि अधिकारियों/कर्मचारियों की सम्पादकीय प्रतिभा का योगदान इस पत्रिका के प्रकाशन में लिया जा सके। इस पत्रिका में कृषि संबधी, विशेषकर राई–सरसों सम्बन्धित सामान्य वैज्ञानिक लेखों को प्रकाशित किया जाता है। यह पत्रिका किसानों के साथ–साथ प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए भी लाभप्रद है। सिद्धार्थः सरसों संदेश का यह बारहवां अंक सरसों एवं सामान्य खेती से संबधित वैज्ञानिक एवं सामान्य लेखों से सुसज्जित है। इस पत्रिका के माध्यम से हमारा प्रयास होता है कि कृषि, विशेषकर सरसों अनुसंधान एवं उत्पादन से जुड़े सभी लोग भाषा की शुद्धता की चिंता किए बिना, आम आदमी की समझ में आने वाली सरल हिन्दी भाषा में तकनीकी एवं समान्य लेखन के लिए प्रेरित होगें।

राजभाषा नीति कार्यान्वयन व हिन्दी के प्रोत्साहन हेतु निदेशक (राजभाषा), भा.कृ.अनुप. नई दिल्ली एवं निदेशक, भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनके प्रेरणात्मक मार्गदर्शन से पत्रिका के बारहवे अंक का प्रकाशन सम्पन्न हो सका। हम निदेशालय के समस्त अधिकारियों व कर्मचारियों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। अन्त में उन सभी लेखकों के भी धन्यवादी हैं जिनके लेखों की वजह से इस पत्रिका का प्रकाशन सम्भव हो पाया है। यह हर्ष का विषय है कि विषय–विशेषज्ञों द्वारा लिखित वैज्ञानिक लेखों से कृषकों एवं जन–साधारण में इस पत्रिका की लोकप्रियता बढ़ी है। फिर भी इस पत्रिका में उत्तरोत्तर सुधार के लिए आपके सुझाव और लेख सर्वदा आमंत्रित किये जाते हैं।

संपादक मण्डल

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ सं.

सरसों की जैविक खेती 1–4

सन्तोष कुमार यादव, धनन्जय कुमार सिंह, कीर्ति शर्मा

राई–सरसों में खरपतवारों का वैज्ञानिक प्रबंधन 5–7

वासुदेव मीणा, मोहन लाल दौतानियाँ, मुरलीधर मीणा

उच्च उत्पादकता के लिए सरसों में एकीकृत कीट प्रबंधन 8–10

सरवन कुमार, अर्चना अनोखे, प्रमोद कुमार राय

कोल्चिसिन प्रेरित बहुगुणिता से पादप कार्यिकी में परिवर्तन 11–15

ललित कृष्ण मीणा, भीरू लाल मीना, मोहन लाल दौतानियाँ

सरसों की खली व उनकी गुणवत्ता 16–18

अनुभूति शर्मा, प्रशांत यादव, पूर्णिमा सोगरवाल

सरसों के तेल का सेवन : सेहत एवं औषधीय गुणों से भरपूर 19–22

ओम प्रकाश, पल्लवी यादव, ब्रह्म प्रकाश

नैनो यूरिया : प्रयोग विधि, विशेषता एवं फसल पर प्रभाव 23–25

लक्ष्मण प्रसाद कुमावत, राजेश कुमार दौतानियाँ

सरसों के भूसे का महत्व एवं प्रबंधन 26–28

राजेश कुमार दौतानियाँ, ओमा शंकर भुखर, कुलदीप सिंह

फसल उत्पादन में फॉस्फोरस की उपयोगिता 29–31

दिलखुश मीणा, मुरलीधर मीणा, चेतन कुमार दौतानियाँ

गंधक : सरसों पैदावार के लिए आवश्यक पोषक तत्व 32–33

मुकेश प्रजापत, दिलखुश मीणा, मुरलीधर मीणा

फसलोत्पादन में पोटाश का प्रबंधन एवं महत्व 34–36

चेतन कुमार दौतानियाँ, मुरलीधर मीणा, राजेश कुमार दौतानियाँ

जैविक खेती में सुक्ष्मजीवों का महत्व 37–39

मोहन लाल दौतानियाँ, मुरलीधर मीणा, मुकेश कुमार मीणा

मृदा स्वास्थ्य एवं टिकाऊ खेती हेतु एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन 40–43

पार्वती दीवान, राजहंस वर्मा, राजेश कुमार दौतानियाँ

सरसों की उन्नत खेती में मधुमक्खियों का महत्व 44–48

दीप्ति श्रीवास्तव, संदीप कुमार सिंह, प्रशान्त यादव

एक चमत्कारी पदार्थ, रॉयल जैली एवं उसके स्वास्थ्य लाभ 49–51

अर्चना अनौखे, प्रभू दयाल मीना, रामसिंह

मौसम विविधता का सरसों की फसल पर प्रभाव 52–54

मुरलीधर मीणा, चेतन कुमार दौतानियाँ, प्रमोद कुमार राय

खाद्य तेलों में भारत की आत्मनिर्भरता : आवश्यकता और उपाय 55–56

नवीन चंद्रा गुप्ता

भारतीय सरसों का स्वास्थ्य में संभावित उपयोग 57–59

विजय कमल मीना, रजत चौधरी, सुभाष चंद

विश्व में पराजीनी फसलों की बढ़ती स्वीकार्यता 60–64

प्रशान्त यादव, सुषमा यादव, अनुराग मिश्रा

अनुसूचित जाति उप–योजना, भरतपुर की सफलता की कहानी 66–67

मोहन लाल दौतानियाँ, मुरलीधर मीना, अशोक कुमार शर्मा

मेटाजिनोमिक्स तकनीक द्वारा मृदा सूक्ष्म जीव समुदायों का अध्ययन 68–71

सुषमा यादव, अनुभूति शर्मा, अरुण कुमार

सरसों की जैविक खेती

सन्तोष कुमार यादव, धनन्जय कुमार सिंह, कीर्ति शर्मा
गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर

देश में क्षेत्रफल तथा उत्पादन दोनों की दृष्टि से सरसों का तिलहन फसलों में प्रमुख स्थान है। सरसों रबी की एक प्रमुख तिलहनी फसल है। जिसका भारतीय अर्थव्यवस्था में एक विशेष स्थान है। इसकी खेती मुख्य रूप से राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा एवं मध्य प्रदेश में की जाती है। सरसों कृषकों के बीच बहुत अधिक लोकप्रिय है क्योंकि इसमें कम सिंचाई व लागत में दूसरी फसलों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। इसकी खेती मिश्रित रूप से एवं विभिन्न फसल चक्रों में आसानी से की जा सकती है।

सरसों एक वर्षीय शाक जाति का पौधा है। यह फसल कम सिंचाई एवं लागत में दूसरी अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक लाभ प्रदान करती है। सरसों के तेल में वसा, अम्ल तथा लिनोलेनिक तथा लिनोलिक अम्ल की मौजूदगी इसके लाभकारी गुणों को प्रदर्शित करती है। परंतु इसके तेल में इरूसिक अम्ल की अधिक मात्रा अंतराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नहीं है। भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान भोपाल में पिछले कुछ वर्षों से सरसों की जैविक खेती पर शोध कार्य प्रारंभ किया गया। इस शोध कार्य में पोषण प्रबंधन, उन्नत सस्य तकनीकों तथा कीट एवं बीमारियों की रोकथाम का विशेष ध्यान रखा गया। इस शोध से यह स्पष्ट हो गया है कि जैविक पद्धति द्वारा सरसों की भरपूर उपज प्राप्त की जा सकती है।

जैविक सरसों उत्पादन से लाभ

- मृदा में जैविक कार्बन एवं उर्वरता में सुधार होता है।
- मृदा में होने वाली जैविक क्रियाओं में सुधार होता है।
- जैविक खादों तथा कीटों व बीमारियों की रोकथाम में काम आने वाले पदार्थों का उत्पादन किसान अपने खेत पर ही कर सकते हैं, जिससे उत्पादन लागत में कमी हो जाती है।
- जैविक कृषि में कचरे के उचित प्रबंधन द्वारा प्राकृतिक संतुलन बना रहता है तथा साथ ही पर्यावरण प्रदूषण में भी कमी आती है।
- सरसों की पत्तियां झड़कर खेत की मिट्टी में मिल जाती हैं और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ा देती हैं।
- मृदा में उपस्थित विभिन्न लाभदायक जीवों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।
- मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है।

सरसों की खेती के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु

उपयुक्त जलवायु–

भारत में सरसों की खेती शीत ऋतु में की जाती है। इस फसल को 18 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। सरसों की फसल के लिए फूल आते समय पैदावार के लिए वर्षा, अधिक आर्द्रता एवं वायुमण्डल में बादल छाये रहना अच्छा नही रहता है। अगर इस प्रकार का मौसम होता है, तो फसल पर माहू या चैंपा के आने की अधिक संभावना हो जाती है।

भूमि का चयन

सरसों समतल और अच्छे जल निकासी वाली बलुई और दोमट मिट्टी में अच्छी उपज देती है। इसके लिए भूमि गहरी और इसमें जल धारण करने की क्षमता अच्छी होनी चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए मिट्टी का पी. एच. मान उदासीन होना चाहिए। अत्यधिक अम्लीय एवं क्षारीय मृदा इसकी खेती हेतु उपयुक्त नहीं है। यद्यपि क्षारीय भूमि में उपयुक्त किस्म तथा शस्य क्रियाऐं अपनाकर इसकी खेती की जा सकती है। यदि भूमि क्षारीय हो वहां तीन वर्ष में एक बार जिप्सम 5 टन/हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। जिप्सम की आवश्यकता मृदा पी. एच. मान के अनुसार भिन्न हो सकती है।

खेत की तैयारी

सिंचित क्षेत्रों में खरीफ फसल की कटाई के बाद पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से और उसके बाद 1–2 जुताई देशी हल/कल्टीवेटर से करनी चाहिए। इसके पश्चात् पाटा लगाकर ढ़ेलों को तोड़कर मिट्टी को भुरभुरा करना चाहिए। गर्मी में गहरी जुताई करने से हानिकारक कीट नष्ट हो जाते हैं। अगर बुआई से पूर्व खेत में नमी की कमी है

तो, खेत में पलेवा करना चाहिए। असिंचित क्षेत्रों में जहाँ सरसों की खेती खरीफ फसल के बाद खाली खेतों में की जाती है वहां प्रत्येक अच्छी वर्षा के बाद डिस्क/तवा हैरो चलाया जाता है ताकि नमी को संरक्षित किया जा सके। जब वर्षा ऋतु समाप्ति की ओर हो तो जुताई के बाद पाटा लगाया जाना चाहिए जिससे खेत अच्छी तरह से तैयार हो जाए।

समय पर बुआई वाली सिंचित क्षेत्र की किस्में :–

किस्में	पकाव अवधि (दिन)	उपज (कि.ग्रा./है.)	तेल (प्रतिशत)	पैदावर के लिए उपयुक्त क्षेत्र
पूसा बोल्ड	110–140	2000–2500	40	राजस्थान, गुजरात, दिल्ली, महाराष्ट्र
पूसा जय किसान (बायो 902)	155–135	2500–3500	40	गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र
क्रान्ति	125–135	1100–2135	42	हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान
आर एच 30	130–135	1600–2200	39	हरियाणा, पंजाब, पश्चिम राजस्थान
आर एल एम 619	140–145	1340–1900	42	गुजरात, हरियाणा, जम्मू व कश्मीर,

असिंचिंत क्षेत्र के लिए किस्में :–

किस्में	पकाव अवधि (दिन)	उपज (कि.ग्रा./है.)	तेल (प्रतिशत)	पैदावर के लिए उपयुक्त क्षेत्र
अरावली	130–135	1200–1500	42	राजस्थान, हरियाणा
गीता	145–150	1700–1800	40	पंजाब, हरियाणा, राजस्थान
आर जी एन 48	138–157	1600–2000	40	पंजाब, हरियाणा, राजस्थान
आर बी 50	141–152	846–2425	40	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान,
पूसा बहार	108–110	1000–1200	42	असम, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल

अगेती बुआई तथा कम समय में पकने वाली किस्में:–

किस्में	पकाव अवधि (दिन)	उपज (कि.ग्रा./है.)	तेल (प्रतिशत)	पैदावर के लिए उपयुक्त क्षेत्र
पूसा अग्रणी	110–115	1500–1800	40	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान
पूसा मस्टर्ड 27	115–120	1400–1700	42	उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड,
पूसा मस्टर्ड 28	105–115	1750–1990	41.5	हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली,
पूसा सरसों 25	105–110	1500–1600	39.6	उत्तरी पश्चिमी राज्य
पूसा तारक	118–123	1924–2030	40	उत्तरी पश्चिमी राज्य
पूसा महक	115–120	1750–1850	40	उत्तरी–पूर्वी व पूर्वी राज्य

सरसों की बुवाई के लिए अनुकूल समय सितम्बर के अंतिम सप्ताह से अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक है। देरी से बुआई करने पर कीटों के प्रकोप के साथ–साथ पाले व ठंड से नुकसान होने की संभावना बढ़ जाती है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि बुआई के समय तापमान 26–30 डिग्री सेल्सियस हो। यदि तापमान 32°C अधिक हो तो बुआई देर से करना चाहिए।

बुआई :– सरसों के पौधों के आपस में सघनता अच्छी पैदावार तय करता है। इसलिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेमी, तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से 20 सेमी रखना चाहिए।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार :– बीज की मात्रा 4–5 कि. ग्रा./है. पर्याप्त होती है। वातावरण व नत्रजन के प्रभावशाली स्थिरीकरण के लिए सरसों के बीजों को *एजोस्पाइरिलियम्* कल्चर से तथा फास्फोरस घुलनशील जीवणु कल्चर से बीज को प्रत्येक 5–5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज उपचारित करना चाहिए। बीजों को बुआई से पहले गुड़ के घोल से नम करके जीवाणु कल्चरों के साथ अच्छी तरह मिलाकर छाया में सुखाना चाहिए। फसलों को स्कलेरोशिया गलन रोग के प्रकोप से बचाने के लिए लहसुन का 2 प्रतिशत घोल बीजोपचार करना उपयुक्त पाया गया है।

सीधी बुआई :– शुष्क दशाओं में अच्छी खेती लेने के लिए पौधों की उचित और वांछित पौध संख्या बनाये रखना वास्तव में बाधा है। इस समस्या के निवारण के लिए जहाँ तक संभव हो बीज को रिजर सीडर द्वारा पंक्तियों में बोया जाये। बुआई के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज उर्वरक के संपर्क में न आये नही तो अंकुरण प्रभावित होगा। इसके लिए बीज को 4 से 5 सेंटीमीटर गहरा और उर्वरक को 7 से 10 सेंटीमीटर गहरा डाला जाये। इसके लिए सही तरीका यह होगा कि भीगे बोरे में बीजों को रखकर रात भर ढ़क दिया जाये या गीली मिट्टी में रख सकते हैं।

पोषण प्रबंधन :–

तिलहनी फसलों की जड़े मूसला प्रकृति की होती है। जो कि काफी गहराई तक जाती है। जड़ो की समुचित वृद्धि के लिए आवश्यक है कि खेत की मिट्टी पोली एवं हवादार रहे जिससे जड़ो तथा एवं मृदा में विद्यमान लाभकारी जीवाणुओं की सक्रियता बढ़ जाए। जैविक खाद को भूमि में मिलाने से भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है और भौतिक दशा अनुकूल बनी रहती है। इसके साथ ही इन खादों के द्वारा सभी प्रकार के पोषक तत्व पौधों को पर्याप्त अवस्था में मिल जाते हैं। कभी भी कच्ची खाद का उपयोग न करें इससे खेत में दीमक लगने की आशंका के साथ ही खेत में खरपतवार भी अधिक उगते हैं।

जैविक खादों को बुआई से 10–15 दिन पूर्व ही खेत में बिखेर कर समान रूप से ऊपरी 15 से.मी. गहराई तक अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। स्थानीय उपलब्धता के आधार पर उपरोक्त खादों में से कोई एक अथवा दो या तीन खादों को सम्मिलित रूप से उपयोग कर सकते हैं। सरसों में गोबर की खाद एवं कुक्कुट खाद का सम्मिलित रूप से उपयोग करने पर अन्य मिश्रणों की तुलना में अधिक उपज प्राप्त होती है। जब जैविक खादों का सम्मिलित उपयोग हो रहा हो तो इस बात का प्रमुख रूप से ध्यान रखना चाहिए कि फसलों को कुल मिलाकर 60 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर की दर से उपलब्ध होनी चाहिए।

माइकोराइजा का सरसों की खेती में प्रयोग :–

इसका प्रयोग सरसों की फसल में बहुत ही लाभदायक साबित हुआ है। खाद में मुख्य पोषक तत्वों के साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाये जाते है जिससे पौधे को उचित पोषण प्राप्त होता है। गोबर की खाद से मृदा की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है एवं मृदा संरचना मे सुधार होता है। अतः भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए जैविक खादों का उपयोग आवश्यक होता है। सरसों की फसल से पूर्व हरी खाद का भी प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए वर्षा शुरू होते ही ढैंचा की बुआई करें। *एजोटोबैक्टर* 10–15 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज से बीजोपचार भी लाभदायक रहता है, इससे नत्रजन एवं फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है एवं उपज में वृद्धि होती है।

विरलीकरण :–

खेतों मे पौधों की संख्या और समान पौध बढ़वार के लिए बुआई के 15–20 दिन बाद पौधों का विरलीकरण (थिनिंग) आवश्यक रूप से करना चाहिए। कतार में बुआई करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। सिंचित खेती में कतार से कतार की दूरी 45 से.मी. और पौधो की दूरी 15–20 से.मी. होनी चाहिए। असिंचित खेती में कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी क्रमशः 45 एवं 15 से.मी. रखनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन :–

सरसों वर्ग की फसलों में कम पानी की आवश्यकता पड़ती है। तोरिया, पीली सरसों, लाहा में दो सिंचाई लाभदायक होती है, जिन्हे बुवाई के बाद 30–35 और 50–55 दिनों पर दिया जाए जिससे शाखाएं फूल एवं फलियाँ अधिक बनती हैं। पहली सिंचाई का सबसे अच्छा समय फूल लगने पर बुआई के 30 से 35 दिन बाद होता है एवं दूसरी सिंचाई फली बनने की अवस्था में की जायें। प्रयोगों से स्पष्ट हुआ है कि सरसों में 2 सिंचाई पर्याप्त रहती है यदि सर्दी मे एक वर्षा हो जाए तो दूसरी सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

खरपतवार नियंत्रण :–

सरसों की जैविक खेती हेतु जब फसल 20 से 25 दिन की हो जाए तब एक निराई गुड़ाई खुरपी द्वारा की जाये, जरूरत पड़ने पर खरपतवार निकालते रहना चाहिए, जिससें फसल अच्छी और तंदुरूस्त होगी।

रोग :–

मोजेक :– यह रोग वायरस द्वारा लगता है यह बहुत ही हानिकारक रोग है इसके कारण फसल की पैदावार में बहुत ज्यादा कमी आ जाती है। रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए ।

अंगमारी या झुलसा :– यह रोग फफूंद से लगता है। इसके कारण पौधे पीले पड़ जाते है एवं तेल की मात्रा घट जाती है। इसकी कोई व्यवहारिक रोकथाम नहीं है, फसल समय पर बोये और प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।

मृदु रोमिल फफूंद :– यह रोग भी फफूंद द्वारा ही लगता है, सरसों की पत्तियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। इससे फसल में तेल की मात्रा घट जाती है इस रोग से ग्रसित पौधों को नष्ट करें तथा प्रमाणित बीज बोयें।

नियत्रण :–

25 ग्राम नीम की हरी ताजा पत्ती तोड़ कर अच्छी तरह से कुचल कर 50 ली. पानी मे उबाल लेवें। जब पानी 20 से 25 ली. रह जाये तो इसको ठंडा कर लेना चाहिए एवं किसी सुरक्षित बर्तन में रख लेना चाहिए। जब किसी भी तरह का रोग या किसी भी तरह के कीट का आक्रमण हो तो 200 ली. पानी में 5 ली. नीम का पानी मिलाकर अच्छी तरह से छिड़काव करना चाहिए। इस तरह से रोग मुक्त एंव कीट मुक्त फसल तैयार करना चाहिए।

कीट :–

आरा मक्खी :– इसकी गिडारे सरसों कुल की सभी फसलों को हानि पहुँचाती है। गिडारे काले रंग की होते हैं जो पत्तियों को बहुत तेजी से किनारों से यानि विभिन्न आकार के छेद बनाती हुई खाती है जिससे पत्तियां बिलकुल छलनी हो जाती है।

बालदार गिडार :– इस गिडार के शरीर का रंग पीला या नारंगी होता है परन्तु सिर और पीछे का भाग काला होता है और शरीर पर घने काले बाल होते है।

माहू :– यह छोटा, कोमल शरीर वाला, हरे–मटमैले भूरे रंग का कीट है, जिसके झुण्ड पत्तियों, फूलों, डंठलों एवं फलियों इत्यादि पर चिपके रहते है और रस चूस कर पौधों को कमजोर कर देते हैं।

नियत्रण :–

इन कीड़ो को नियंत्रित करने के लिए जैविक कीटनाशक बनाने और प्रयोग करने का तरीका

- देसी गाय का 5 लीटर मूत्र, 5 किलोग्राम नीम की पत्ती या मट्ठा 2 किलोग्राम नीम की खली या 2 किलोग्राम नीम जैविक कीटनाशक एक बड़े मटके में भरकर 45 से 50 दिन तक सड़ाये। सड़ने के बाद उस मिश्रण में से 5 लीटर मात्रा को 200 लीटर पानी मे मिलाकर प्रति एकड़ प्रत्येक सप्ताह तर बतर कर छिड़काव करते रहे।
- 500 ग्राम लहसुन और 500 ग्राम तीखी चटपटी हरी मिर्च लेकर, बारीक पीसकर 200 लीटर पानी में घोलकर स्प्रेयर से अच्छी तरह से तर बतर कर हर सप्ताह छिड़काव करें।
- 10 लीटर देसी गौ–मूत्र में 2 किलोग्राम अकऊआ के पत्ते डालकर 10 से 15 दिन सड़ाकार इस मूत्र को आधा शेष बचने तक उबाले। फिर इसके 1 लीटर मिश्रण को 200 लीटर पानी मे अच्छी तरह मिलाकर स्प्रेयर द्वारा अच्छी तरह से तर बतर कर हर सप्ताह छिड़काव करें।

गहाई :–

सरसो के बोझ या बंडल को सूखने के उपरांत थ्रेसर से मड़ाई कर लें। जब बीजों में औसतन 12–20 प्रतिशत आर्दता प्रतिशत हो जायें तब फसल की गहाई करनी चाहिए।

उपज :–

जैविक पद्धति से सरसों की खेती करने पर प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में रासायनिक खेती की तुलना में सरसों की उपज में 5–10 प्रतिशत की कमी हो सकती है, लेकिन उसके पश्चात् जैविक खेती में समन्वित एवं रासायनिक पद्धति के बराबर या उससे अधिक उपज प्राप्त होती है। सरसों की किस्मों के अनुसार दाने की उपज 10–25 क्विंटल/है. तक प्राप्त हो सकती है।

❑❑❑

राई–सरसों में खरपतवारों का वैज्ञानिक प्रबंधन

वासुदेव मीणा, मोहन लाल दौतानियाँ, मुरलीधर मीणा
भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

हमारे देश में उगाई जाने वाली तिलहनी फसलों में राई–सरसों का सोयाबीन के बाद दूसरा स्थान है। राई–सरसों की खेती कृषकों में बहुत लोकप्रिय होती जा रही है क्योंकि इससे कम सिंचाई व लागत से अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। इसकी खेती मिश्रित फसल के रूप में या दो फसलीय चक्र में आसानी से की जा सकती है। देश में राई–सरसों की खेती मुख्यतः उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, असम, गुजरात, जम्मू कश्मीर आदि राज्यों में की जाती है। इसीलिये भौगोलिक परिस्थितियों, जलवायु एवं भूमि के प्रकार में परिवर्तन के अनुसार इनमें खरपतवारों की संख्या एवं प्रजाति में भी बदलाव आ जाता है।

सरसों में कई प्रकार के खरपतवार उग जाते हैं जो फसल के साथ पोषक तत्व, पानी, प्रकाश व स्थान के लिये प्रतिस्पर्धा करते हैं। इतना ही नहीं खरपतवार भूमि में कई प्रकार के हानिकारक तत्व भी छोड़ते हैं तथा अप्रत्यक्ष रूप से फसल में रोग व हानिकारक कीट भी फैलाते हैं। इन सभी कारणों से पौधे कमजोर हो जाते हैं जिससे पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। खरपतवारों के कारण सरसों की उपज में 60 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। सरसों में बथुआ, खर बथुआ, पीली सैंजी, सफेद सैंजी, जंगली पालक, कृष्ण नील, प्याजी आदि प्रमुख खरपतवार हैं। इनके अलावा सरसों में आग्या, ओरोंबैंकी नामक पराश्रयी खरपतवार का भी प्रकोप होता है।

अगर फसल को पोषक तत्वों को चुराने वाले खरपतवारों से बचा ले तो इसकी पैदावार और भी बढ़ाई जा सकती है। इस समय कुल खाद्य तेल उत्पादन का लगभग एक तिहाई तेल राई–सरसों द्वारा प्राप्त होता है। राई–सरसों की खेती हमारे देश में लगभग 6.69 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है जिससे लगभग 10.11 मिलियन टन उत्पादन होता है। लेकिन इसकी औसत पैदावार विश्व की औसत पैदावार की तुलना में काफी कम है। सिंचित क्षेत्रों में राई–सरसों के उत्पादन को बढ़ाने में आने वाली कठिनाईयों में सबसे महत्वपूर्ण है इस फसल को नुकसान पहुंचाने वाले खरपतवार जिसका यदि सही समय पर प्रभावी नियंत्रण न किया जाये तो ये फसल की पैदावार एवं गुणवत्ता में भारी कमी ला देते हैं। इसलिए अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए फसल को खरपतवार मुक्त रखना जरुरी है।

प्रमुख खरपतवार और उनका वर्गीकरण :– राई–सरसों की फसल को नुकसान पहुँचाने वाले प्रमुख खरपतवार इस प्रकार है।

खरपतवार का प्रकार	वनस्पतिक नाम	हिंदी नाम
चौड़ी पत्ती वाले	*चीनोपोडियम एल्बम* *लेथाइरस अफाका* *मेडिकागो हिस्पिडा* *चिकोरियम इन्टाइब्स* *एस्फोडिलस टेन्यूफोलियस* *कानवालवुलस आरवेन्सिस* *विसिया सेटाइवा* *मेलीनोटस एल्बा* *एनागेलिस आरवेंसिस* *सोलेनम नाइग्रम* *आरजेमोन मेक्सिकाना*	बथुआ जंगली मटर मरवारी चिकोरी, कासनी प्याजी हिरनखुरी अकरी सेजी कृष्णनील कांदेई सत्यानाशी
संकरी पत्ती वाले	*फेलारिस माइनर* *साइनुडान डेक्टीलान* *अवेना सिटाइवा*	गेहूं का माँमा दूब जंगली जई
मोथा कुल	*सायप्रस रोटन्डस*	मोथा

खरपतवारों से होने वाले दुष्प्रभाव :–

खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्व, नमी, स्थान एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करके राई–सरसों की पैदावार एवं तेल प्रतिशत में कमी कर देते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार राई–सरसों की पैदावार में खरपतवारों की संख्या एवं प्रजाति के अनुसार 20 से 70 प्रतिशत तक कमी आंकी गई है। अनियंत्रित खरपतवार भूमि से 44 से 48 किलोग्राम नाइट्रोजन, 20 से 44 किलोग्राम फास्फोरस तथा 45 से 82 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर शोषण करके फसल को पोषक तत्वों से वंचित कर देते हैं। संरक्षित नमी के प्रति खरपतवार प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए फसल की वृद्धि के शुरुआती चरणों में सभी खरपतवारों को हटाने के लिए उचित प्रबंधन करना चाहिए।

उपयुक्त समय :–

राई–सरसों में खरपतवार नियंत्रण प्रक्रिया में समय का सर्वाधिक महत्व है यदि खरपतवारों की रोकथाम, खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्था में न की गई तो उससे भरपूर लाभ नहीं मिल पाता है। राई–सरसों में यह अवस्था बुआई के बाद 40 दिन तक रहती है। खरपतवार नष्ट करने के लिए एक निराई–गुड़ाई सिंचाई के पहले और दूसरी पहली सिंचाई के बाद करनी चाहिए। यह आवश्यक है कि यदि हम शाकनाशी रसायनों का उपयोग कर रहे है तो उनका असर भूमि में कम से कम बुआई के बाद 40 दिन तक रहना चाहिये।

रोकथाम की विधियाँ :–

राई–सरसों में खरपतवार एक समस्या है जो मूल फसल की खुराक खाकर उनकी बढ़ोत्तरी को प्रभावित करते है। इनके नियंत्रण के लिये विभिन्न प्रकार की कुछ विधियाँ है। अगर कृषक इन्हें अपनाये तो इन पर आसानी से नियंत्रण पाया जा सकता है साथ ही साथ फसल की गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी की जा सकती है। ये निम्न प्रकार है–

निवारक विधि :–

इस विधि में वे सभी क्रियाएं शामिल है जिसके द्वारा खरपतवारों के प्रकोप को रोका जा सकता है। जैसे प्रमाणित बीजों का प्रयोग, अच्छी सड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद का प्रयोग, सिंचाई की नालियों की सफाई, खेत की तैयारी और बुआई के प्रयोग में किये जाने वाले यंत्रों को प्रयोग से पूर्व अच्छी तरह से सफाई इत्यादि।

यांत्रिक विधि :–

इस विधि द्वारा खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। फसल की प्रारंभिक अवस्था में बुआई के 40 दिनों के बीच का समय खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से क्रांतिक समय है। अतः इसी बीच खुरपी या हैरो से दो बार निराई–गुड़ाई, पहली बुआई के 20 दिन बाद तथा दूसरी 40 दिन बाद करने से खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। इसके बाद उगने वाले खरपतवार फसल के नीचे दबकर रह जाते है तथा फसल से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते हैं।

रसायनिक विधि :–

शाकनाशी रसायनों के प्रयोग से जहाँ एक ओर खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर लागत कम आती है तथा समय की बचत होती है। शाकनाशी रसायनों के प्रयोग में ध्यान देने योग्य बात यह होती है कि उनका प्रयोग सही समय पर, उचित मात्रा में तथा ठीक ढंग से होना चाहिये अन्यथा लाभ की बजाय नुकसान उठाना पड़ सकता है। राई–सरसों में खरपतवार नियंत्रण शाकनाशी इस प्रकार है जैसे–

खरपतवारनाशी रसायन का नाम	मात्रा ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर	उपयोग का समय
आक्साडायजान	750	बुआई पश्चात् लेकिन फसल उगने से पहले
आइसोप्रोटुरान	1000	बुआई पश्चात् लेकिन फसल उगने से पहले
पेन्डीमेथालिन	1000	बुआई पश्चात् लेकिन फसल उगने से पहले
फ्लूक्लोरालिन	1000	जहां पलेवा कर के बुवाई की जानी हो वहां यह दवा बुवाई से पूर्व भूमि में मिला देना चाहिये जबकि असिंचित बुवाई की स्थिति में पहले फसल की बुवाई करें इसके बाद इस दवा का छिड़काव कर सिंचाई करें।

रसायन छिड़काव करने की विधि :–

खरपतवारनाशी की आवश्यक मात्रा को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से समान रूप से छिड़काव करना चाहिये। खरपतवारनाशी दवा का प्रयोग न करने पर बुवाई के 20–25 दिन बाद निराई–गुड़ाई कर खरपतवार निकाल देना चाहिये। प्याजी व जंगली पालक समस्या ग्रस्त खेतों में राया–गेहूँ फसल चक्र अपनायें। जिन खेतों में औरोंबैंकी का प्रकोप हो तो औरोंबैंकी के पौधों को बीज बनने से पहले ही उखाड़ कर नष्ट करें एवं उन खेतों में फसल चक्र अपनायें तथा 3–4 वर्ष तक सरसों आदि फसलें जिनकी जड़ों पर औरोंबैंकी पनपता हो नहीं बोयें।

विशेष सावधानियाँ :–

उपरोक्त रसायनों का प्रयोग करते समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। राई–सरसों में खरपतवार नियंत्रण पर किये गये शोध कार्यों के फलस्वरूप पता चला है कि शाकनाशी रसायनों के प्रयोग से फसल पैदावार एवं फार्म आय में वृद्धि होती है इसीलिये खरपतवारों को नष्ट करने के लिये इनका प्रयोग करना चाहिये। नैपसैक स्प्रेयर एवं फ्लैट फेन नोजल का छिड़काव हेतु प्रयोग करें। खरपतवारनाशी रसायन हमेशा रसीद के साथ प्रमाणित स्थान या दुकान से खरीदे ताकि मिलावट की संभावना नही रहे।

ओरोंबैंकी खरपतवार का नियंत्रण :–

ओरोंबैंकी एक परजीवी खरपतवार है जो अपने जीवन चक्र को पूरा करने के लिए पूर्ण रूप से दूसरे स्वपौषित पौधों पर निर्भर रहता हैं। ओरोंबैंकी को बकुम्भा, गठंवा अथवा भूमि फोड़ के नाम से भी जाना जाता है। स्थानीय भाषा में किसान इसे लौंकी मूला के नाम से भी पुकारते हैं। सर्दियों की ऋतु में यह फलता व फूलता है। यह पराश्रयी पौधा भूरे रंग का होता है तथा इसके फूल नीले रंग के होते हैं।

इसकी ऊँचाई एक फीट तक पाई जाती है। केवल बीजों द्वारा ही इसका नया पौधा जन्म पाता है। ओरोंबैंकी मुख्यतया सरसों कुल की फसलों (सरसों, तोरिया, राया), बैंगन व तंबाकू का अपर्ण हरित व्यक्त पुष्पीय पूर्ण रूप से मूल परजीवी खरपतवार होता हैं जो खेतों में जड़ों से फसल द्वारा संश्लेषित पदार्थ को चूस कर उन्हें नुकसान पहुंचाता है और फसल के उत्पादन को अपेक्षित रूप से कम कर देता है। ओरोंबैंकी आर्थिक मूल्य की महत्वपूर्ण द्विबीजपत्रीय फसलों की जड़ों पर आक्रमण करता है। शोध बताते है कि सरसों की फसल में इसके प्रकोप से 70 प्रतिशत तक हानि हो सकती हैं। यह परपोषी पौधो के साथ पोषक तत्वों एवं जल की आपूर्ति मे तीव्र प्रतिस्पर्धा कर पौधों को कमजोर बना देता है, फलस्वरूप पौधो की वृद्धि रूक जाती है एवं ग्रसित पौधों से प्राप्त उपज में अप्रत्याशित कमी आ जाती है । इसके नियंत्रण के लिए उन्नत किस्मों के स्वस्थ व प्रमाणित बीज जिनमें खरपतवारों के बीजों का संक्रमण न हो, क़ा प्रयोग करना चाहिए। परजीवी ग्रसित खेतों से प्राप्त सरसों के बीज के प्रयोग से बचें। ग्रसित खेतों में प्रयोग करने के बाद कर्षण व कटाई के कार्य में आये उपकरणों की सफाई करें, उसके पश्चात ही अन्य खेत मे उपयोग करें। गर्मी के महीनों मे और फसल की बुवाई के समय खेत की तैयारी हेतु गहरी जुताई करें।

शाकनाशियों के उपयोग में ध्यान देने योग्य बातें :–

- खरपतवारनाशी लेबल को ध्यान से पढ़ें और लेबल पर दिए गए निर्देशों का पालन करें।
- केवल फ्लैट पंखे या इवान स्प्रे नोजल का प्रयोग करें।
- स्प्रे करते समय हमेशा हाथ (दस्ताने) और मुंह को ढ़क कर रखें।
- स्प्रेयर को उपयोग करने से पहले और बाद में साफ पानी से साफ करें।
- छिड़काव किए जाने वाले क्षेत्र के लिए आवश्यक वाणिज्यिक उत्पादों की मात्रा की गणना करें।
- शाकनाशी को कम मात्रा में (4–2 लीटर) या पहले पानी में मिलाएं और फिर पानी के साथ आवश्यक मात्रा 600–750 लीटर प्रति हैक्टेयर बना लें।
- हवा और बरसात के दिनों में शाकनाशी का छिड़काव न करें।
- वर्षा से ठीक पहले और वर्षा के तुरंत बाद छिड़काव न करें।
- तेज धूप वाले दिन या तेज हवा वाली परिस्थितियों में स्प्रे न करें।
- हवा की दिशा में छिड़काव न करें।
- शाकनाशी के डिब्बों में खाद्य सामग्री न रखें और बच्चों से दूर रखें।
- अनुशंसित मात्रा से अधिक खुराक और उच्च सांद्रता का कभी भी उपयोग न करें ।
- शाकनाशीयों को मिलाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले कंटेनरों और बाल्टियों को पूरी तरह से धोने के बाद भी घरेलू कामों में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए।
- छिड़काव के तुरंत बाद उपचारित क्षेत्र में कभी भी सुरक्षात्मक कपड़े पहने बिना प्रवेश न करें।
- कपड़े धोने और नहाने से पहले कभी भी खाना या धूम्रपान न करें।
- षाकनाशीयों का उपयोग अधिक मात्रा में न करें क्योंकि ये पौधे के स्वास्थ्य और पर्यावरण को प्रभावित कर सकते है।

❑❑❑

उच्च उत्पादकता के लिए सरसों में एकीकृत कीट प्रबंधन

सरवन कुमार[1], अर्चना अनोखे[2], प्रमोद कुमार राय[3]

[1]पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब

[2]भा.कृ.अनुप.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

[3]भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

सरसों रबी मौसम की एक महत्वपूर्ण तिलहन फसल है। सरसों की सफल खेती में विभिन्न जैविक और अजैविक कारक, खेत और गैर–कृषि कारक, तकनीकी और गैर–तकनीकी समस्याओं जैसी कई बाधाएं हैं। जैविक दबावों में, कीटों से होने वाला नुकसान इन फसलों की सफल खेती में प्रमुख बाधाओं में से एक है। यदि समय पर प्रबंधन नहीं किया जाए, तो अकेला सरसों का चेंपा उपज में 23 से 96 प्रतिशत की कमी ला सकता है। चेंपे के अलावा, अन्य कीट जैसे चितकबरा कीट और सलेट्टी सुंडी/आरा मक्खी भी फसल को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

इन कीटों के कुशल और प्रभावी प्रबंधन के लिए किसानों को बुवाई से लेकर फसल की कटाई तक सतर्क रहने की जरूरत है। कीटनाशकों का उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब उनकी वास्तव में आवश्यकता हो जिसके लिए उनके जीवन चक्र, व्यवहार, उपस्थिति के समय और फसल पर नुकसान की प्रकृति की गहन समझ की आवश्यकता होती है। इस लेख में उनकी पहचान, क्षति की प्रकृति और प्रबंधन का विवरण दिया गया है।

चितकबरा कीट :–

यह कीट देश के गर्म और शुष्क क्षेत्रों में अधिक गंभीर होता है। मध्यम से उच्च तापमान (20–40 डिग्री सेल्सियस) और कम आर्द्रता इसके विकास के लिए अनुकूल है। चितकबरा कीट एक सुंदर सा छोटा कीट है, जो 6–7 मिमी लंबा और 3–4 मिमी चौड़ा, गुलाबी और चमकदार पीले धब्बों से रंगा हुआ काले शरीर वाला कीट है। बच्चों के शरीर पर कई हल्के भूरे और लाल निशान होते हैं। बच्चे और वयस्क दोनों ही पौधों से रस चूसते हैं और उन्हें कमज़ोर कर देते हैं। अक्टूबर के महीने में फसल के अंकुरण पर इसका प्रकोप अधिक होता है। नुकसान वाले नये पौधे मुरझा कर मर जाते हैं। ज्यादा नुकसान की स्थिति में दोबारा बुवाई की आवश्यकता पड़ जाती है। पूरी सर्दियों में यह सरसों प्रजाति के तिलहन और सब्जियों की फसलों पर जीवित रहता है, लेकिन कीट की आबादी निम्न स्तर पर रहती है। मार्च–अप्रैल के दौरान, यह फिर से बड़ी संख्या में बढ़ता है और फली चरण के दौरान फसल को नुकसान पहुंचाता है तथा खलियान में भी समस्या बन जाता है।

सरसों का चेंपा :–

सरसों एफिड (चेंपा) सरसों की फसल का सबसे गंभीर कीट है। पौधों को नुकसान करने और अंततः उपज में भारी कमी के कारण इसे मुख्य कीट का दर्जा हासिल है। सरसों पर यह जनवरी से मध्य मार्च तक काफी सक्रिय रहता है। नुकसान असंख्य युवा और वयस्कों कीटों के कारण होता है जो पौधों के विभिन्न भागों विशेष रूप से फूलों और फली से रस चूसते हैं। इसके परिणाम स्वरूप पौधे छोटे रह जाते हैं, फलियां सिकुड़ जाती हैं और बीज ठीक से विकसित नहीं हो पाते। इस कीट से अत्यधिक प्रभावित फसल मुरझा जाती है और अंततः कोई उपज देने में विफल हो जाती है।

एफिड्स/चेंपा एक प्रक्रिया, जिसे पार्थेनोजेनिसिस कहते हैं, द्वारा प्रजनन करते हैं यानी मादा चेंपा नर के साथ संभोग किए बिना मादा बच्चों को जन्म देती है जो आगे चलकर 8–10 दिनों की छोटी अवधि में मातृत्व ग्रहण करते हैं और प्रजनन करना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार, यह जीवन चक्र जारी रहता है और यह हर साल 34–45 पीढ़ियों को पूरा करता है। यह सरसों की फसल पर अक्टूबर–नवंबर में दिखना शुरू हो जाता है और तेजी से बढ़ता है। हालांकि दिसंबर और जनवरी की शुरुआत के दौरान, ठंड के कारण जनसंख्या आमतौर पर निम्न स्तर पर रहती है। कम तापमान (न्यूनतम 4–2 डिग्री सेल्सियस और अधिकतम 6–30 डिग्री सेल्सियस) और मध्यम उच्च आर्द्रता (50–78%) इसकी जनसंख्या वृद्धि के लिए बहुत अनुकूल है।

सलेट्टी सुंडी/आरा मक्खी :–

सुंडी काले रंग की होती है और छोटी फसल पर हमला करती है। वे पत्तियों में छेद करती है और गंभीर हमले की स्थिति में सारे पत्ते खा लेती है। उन्हें पैरों की संख्या से अन्य सुंडीयों से अलग किया जा सकता है। इनके शरीर पर ग्यारह जोड़ी पैर

होते हैं जबकि सामान्य सुंडी के शरीर पर आठ जोड़ी पैर होते हैं। इसके अलावा, जब इनको छुआ जाता है तो ये जमीन पर गिर जाती हैं और ऐसा व्यवहार करती हैं जैसे मर गई हों।

बालों वाली सुंडी और पत्तागोभी की सुंडी :–

बालों वाली सुंडी का शरीर काला पीला और लंबे बालों से ढका हुआ होता है। दूसरी ओर, पत्तागोभी की सुंडी काले धब्बों के साथ हरे रंग की होती हैं। दोनों कीड़ों के वयस्क पत्तियों पर समूहों में बड़े पैमाने पर अंडे देते हैं। बालों वाली सुंडी का हमला आमतौर पर सितंबर–अक्टूबर के महीने में तोरिया पर देखा जाता है। जबकि पत्तागोभी की सुंडी का हमला फरवरी–मार्च में देश के ठंडे और आर्द्र क्षेत्रों में देखा जाता है। अंडों से बाहर आने के बाद सुड्डियां समूहों में पत्तियों को खाती हैं।

पत्ते का सुरंगी कीट :–

यह कीट पत्तियों में टेढ़ी मेढ़ी सुरंग बनाकर नुकसान पहुंचाता है। इसका हमला आमतौर पर फली बनने की अवस्था में देखा जाता है। पत्तियों पर बड़ी संख्या में सुरंगे पौधे की प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में बाधा डालती हैं जिसके परिणामस्वरूप उपज में कमी आती है।

एकीकृत कीट प्रबंधन :–

कीटों के प्रकोप/क्षति के बारे में समय पर पता लगाने के लिए फसल की नियमित निगरानी कम से कम एक बार या यदि संभव हो तो सप्ताह में दो बार की जानी चाहिए, ताकि समय पर नियंत्रण शुरू किया जा सके। इसके लिए निम्नलिखित दिशानिर्देश उपयोगी हो सकते हैं:

- सितंबर–अक्टूबर के दौरान बालों वाली सुंडी तोरिया के पत्तों को या फूल और फलियों को नुकसान पहुंचा सकती है।
- आक्रमण किये हुए पौधों की पत्तियाँ, फूल और फलियाँ खायी हुई प्रतीत होती हैं जो बालों वाली सुंडी के हमले का एक स्पष्ट संकेत है।
- अक्टूबर–नवंबर के दौरान, सरसों के अंकुर चरण पर, यदि पत्तियों या अंकुरों पर सफेद धब्बे दिखाई दे और पौधे मुरझाते दिखाई देते हैं तो यह चितकबरा कीट के वयस्कों और बच्चों द्वारा पौधे का रस चूसने के कारण हुए नुकसान का एक स्पष्ट संकेत है।
- जनवरी के अंत और फरवरी के मध्य के दौरान, पौधों के शीर्ष भाग में कई, छोटे, बहुत नाजुक, हरे रंग के कीड़े लग सकते हैं जिन्हें सरसों का तेला या चेंपा के नाम से जाना जाता है। क्षतिग्रस्त पत्तियाँ पीली, मुड़ी और मुरझाने जैसी लक्षण दिखाती हैं। चेपे के गंभीर प्रकोप की स्थिति में फूल की कलियां और फूल विकृत हो जाते हैं, फलियां सिकुड़ जाती हैं और पौधे छोटे रह जाते हैं। यदि समय पर नियंत्रण के उपाय नहीं किए गए तो पूरी फसल खराब हो सकती है।
- फरवरी–मार्च में, देश के ठंडे और शुष्क क्षेत्रों में पत्तागोभी की सुंडी पत्तियों को खाते हुए देखी जा सकती है। वे समूहों में नुकसान करते हैं और यहां तक कि फली को भी नुकसान पहुंचा सकते हैं।

कीट प्रबंधन रणनीति :–

समस्या की सही पहचान के बाद, इसके प्रबंधन की रणनीति निम्नलिखित विधि से अपनाई जानी चाहिए

चितकबरा कीट प्रबंधन :–

चितकबरा कीट के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित कीट प्रबंधन कार्यक्रम की सिफारिश की जाती है :

- खेतों में साफ सफाई रखनी चाहिए तथा खेतों के आस पास खरपतवार और पादप अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
- बुवाई से पहले बीज का उपचार इमिडाक्लोप्रिड 70 WP 7 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से करें।
- अगर बीज का उपचार न किया हो तो अंकुरण के समय फसल को क्किनालफॉस 0.5: धूल 20–25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।
- बुवाई के 3–4 सप्ताह बाद यदि संभव हो तो पहली सिंचाई कर देनी चाहिए।
- अत्यधिक प्रकोप की अवस्था में मैलाथियान 50 पायस सांद्रण 500 मिली या 35 पायस सांद्रण 625 मिली की मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- फसल की परिपक्व अवस्था पर यदि इस कीट का हमला होता है तो मैलाथियान 50 पायस सांद्रण की 1 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- फसल का रंग सुनहरा होने पर ही कटाई कर लेनी चाहिए।
- फसल की जल्द से जल्द मढ़ाई कर लेनी चाहिए जिससे

कि अधिक नुकसान न हो और पादप अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।

चेंपे का प्रबंधन :–

सरसों के चेपे के प्रभावी और किफायती प्रबंधन के लिए निम्नलिखित कीट प्रबंधन कार्यक्रम की सिफारिश की जाती है

- फसल की बुवाई जल्दी करें और देर से बुवाई से बचें। यह देखा गया है कि देर से बोई गई फसल को चेपे से भारी नुकसान होता है।
- अनुशंसित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करें। यूरिया के अत्यधिक प्रयोग से बचें।
- फूल आने पर सप्ताह में कम से कम एक बार नियमित रूप से फसल का सर्वेक्षण करें।
- यदि चेपे का हमला दिखाई दे, तो पहला छिड़ाकव डाइमेथोयट (Dimethoate) 3000 पीपीएम @ 5 मिली / लीटर पानी के साथ और दूसरा छिड़ाकव 10 दिनों के बाद करना चाहिए।
- भारी हमले की स्थिति में फसल पर 400 ग्राम थायामेथोक्सम (Thiamethoxam) 25 डब्ल्यूजी 1000 लीटर पानी में मिला के प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें।
- यदि 5 दिन बाद दोबारा छिड़काव करना पड़े तो फसल प र 4 लीटर डाइमेथोएट (Dimethoate) 30 ई.सी. (रोगोर) प्रति हेक्टेयर के हिसब से 600–800 लीटर पानी में घोलने के बाद छिड़काव करें। कीटनाशक को बदलने से कीट उसके प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित नहीं करता है और कीटनाशक लंबे समय तक प्रभावी रहता है।

सलेट्टी सुंडी / आरा मक्खी का प्रबंधन :–

इसके प्रबंधन के लिए फसल को 625 मिली प्रति हेक्टेयर पिनालफॉस 25 ईसी 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। आम तौर पर देखा गया है कि चितकबरा कीट के रोकथाम के लिए भुरकाव से इसकी भी रोकथाम हो जाती है।

बालों वाली सुंडी और पत्ता गोभी की सुंडी का प्रबंधन :–

चूंकि ये कीट सामूहिक रूप से अंडे देते हैं, इसलिए नियमित रूप से फसल का सर्वेक्षण करें और अंडे के समूहों को इकट्ठा करने के बाद या तो मिट्टी के नीचे दफन कर या कीटनाशक घोल में डालकर नष्ट कर दें। ऐसा करने से शुरुवाती हमले के दौरान बिना छिड़काव और बिना खर्चे के हम इन कीड़ों की रोकथाम कर सकते हैं। अंडे से निकलने के बाद सुंडियां भी समूह में पत्ते खाती हैं जिनको एकत्र कर नष्ट किया जा सकता है।

सुरंगी कीट का प्रबंधन :–

आमतौर पर जिन खेतों में चेपे के नियंत्रण के लिए छिडकाव किया गया हो, वहां इस कीट के लिए अलग से छिडकाव करने की आवश्यकता नहीं होती है। हालांकि, बिना छिड़काव वाले खेतों में इसे चेपा नियंत्रण के लिए अनुशंसित डाइमेथोएट 30 ईसी का छिड़काव करके नियत्रित किया जा सकता है।

इसके अलावा, आरा मक्खी, बालों वाली सुंडी, पत्तागोभी सुंडी और चितकबरा कीट के उग्र प्रकोप से बचाव के लिए 500 मिली मैलाथियान 50 ईसी को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव किया जा सकता है

सामान्य सावधानियां :–

1. फूल आने की अवस्था में दोपहर के बाद ही फसल पर छिड़काव करें ताकि मधुमक्खियों और अन्य परागण करने वाले कीड़ों को विषाक्तता से बचाया जा सके।
2. आम तौर पर जनवरी के मध्य में सरसों का चेपा गंभीर हो जाता है। इसलिए, जनवरी के पहले सप्ताह से नियमित अंतराल पर इसकी संख्या की निगरानी के लिए और नियंत्रण के बारे में समय पर निर्णय लेने के लिए अधिक सतर्कता की आवश्यकता है।
3. यदि फरवरी–मार्च के दौरान लाल भृंग, सिरफीड / होवर फ्लाई, क्राइसोपा / ग्रीन लेस विंग / हरे पंखों वाला कीट आदि, जो कि हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रु हैं, बहुत ज्यादा सक्रिय हैं, तो जहां तक संभव हो कीटनाशकों के प्रयोग में देरी करनी चाहिए।

❑❑❑

कोल्चिसिन प्रेरित बहुगुणिता से पादप कार्यिकी में परिवर्तन

ललित कृष्ण मीना, भीरुलाल मीना, मोहन लाल दौतनियाँ

भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

पौधों के प्रजनन में बहुगुणिता का महत्व तब ज्यादा समझ में जब समसूत्री अवरोधक कोल्चिसिन को पहली बार 1930 के दशक में खोजा गया था। कोल्चिसिन का उपयोग 1810 से गठिया रोग के उपचार के लिए किया जाता था। कोल्चिसिन को मीडो सैफरन (*कोल्चिकम ऑटमनाल*) और ग्लोरी लिली (*ग्लोरिओसा सुपर्बा*) के कन्द (0.1–0.5%) और बीज (0.2–0.8%) से निकाला जाता है और यह एक अत्यंत जहरीला क्षारीय प्रवृत्ति का यौगिक होता है। यह ठंडे पानी, क्लोरोफॉर्म या अल्कोहल में आसानी से घुलनशील है, लेकिन गर्म पानी में इसकी घुलनशीलता कम है। कोल्चिसिन एक महत्वपूर्ण उत्परिवर्तजन है, जो सूक्ष्मनलिकाएं बनने से रोकता है और गुणसूत्रों की संख्या को दोगुना करता है।

यह आमतौर पर पौधों में बहुगुणिता को विकसित करने के लिए उपयोग किया जाता है और पौधों पर कई उत्परिवर्तन प्रभाव पैदा करके एक समसूत्री जहर के रूप में कार्य करता है। चूंकि गुणसूत्र पृथक्करण में सूक्ष्मनलिकाएं कार्य करती हैं, कोल्चिसिन अर्धसूत्रीविभाजन के दौरान गुणसूत्रों के अलगाव को रोककर बहुगुणिता को प्रेरित करता है, जिसके परिणामस्वरूप आधे युग्मक (सेक्स कोशिकाएं) सामान्य से दोगुनी गुणसूत्र संख्या वाले हो जाते हैं। जबकि, आधे युग्मकों में कोई गुणसूत्र नहीं होता है और दोगुने गुणसूत्र संख्या वाले भ्रूण पैदा करते हैं। कोल्चिसिन न केवल गुणसूत्रों के दोहरीकरण में मदद करता है, बल्कि यह पौधों में उत्परिवर्तन को भी प्रेरित करता है। कोल्चिसिन के माध्यम से उत्परिवर्तित पौधों को "कोल्ची–म्यूटेंट" के रूप में जाना जाता है। विभिन्न प्रजातियों के पौधों में बहुगुणिता करने के लिए कोल्चिसिन सांद्रता की एक विस्तृत श्रृंखला का उपयोग किया गया है, जैसे कि कैंपियन (*लाइक्निक सेनो*) में 0.00001% की न्यूनतम सांद्रता से लेकर मौल के क्वीन (*चेनोमेल्स जपोनिका*) में 1. 5% की अत्यधिक उच्च सांद्रता ने सफलतापूर्वक बहुगुणिता को प्रेरित किया है। हालांकि, प्रभावी परिणामों के लिए उच्च सांद्रता का उपयोग किया जाता है।

मीडो सैफरन *(कोल्चिकम ऑटमनाले)*

ग्लोरी लिली *(ग्लोरिओसा सुपर्बा)*

कोल्चिसिन आमतौर पर एक जलीय घोल के रूप में प्रयोग लिया जाता है; हालांकि, यह पानी में अस्थिर है। इसलिए, प्रयोग से पहले एक ताजा जलीय घोल बनाने की सलाह दी जाती है। बीज उपचार के लिए कोल्चिसिन सांद्रता आमतौर पर 0.1%–0.8% के बीच होती है, क्योंकि उच्च सांद्रता विकृतियों का कारण बन सकती है और टेट्राप्लोइड पौधों के

उत्पादन को कम कर सकती है। इस प्रकार, यथासंभव कम सांद्रता में कोल्चिसिन का उपयोग करने की सलाह दी जाती है। चूंकि कोल्चिसिन पौधों के लिए अत्यधिक विषैला होता है, इसलिए लंबे समय तक एक्सपोजर अवधि के साथ कम खुराक को इसके जहरीले प्रभाव को कम करने और बहुगुणिता उत्पादन दर को बढ़ाने के लिए विश्वसनीय माना जाता है।

कोल्चिसिन की रासायनिक संरचना :–

कोल्चिसिन एक क्षारीय यौगिक है जिसमें आणविक सूत्र $C_{22}H_{25}NO_6$ और रासायनिक नाम N-((7S)-5,6,7,9-टेट्राहाइड्रो–1,2,3,10–टेट्रामेथोक्सी–9–ऑक्सोबेन्ज़ो(a) हेपटालेंन– 7–वाईएल एसिटामाइड)। कोल्चिसिन में तीन रिंग होते हैं, ए–रिंग जो ट्राइमेथॉक्सी फिनाइल रिंग है, बी–रिंग जो एक संतृप्त सात सदस्यीय रिंग है और सी–रिंग जो ट्रोपोलोन रिंग है।

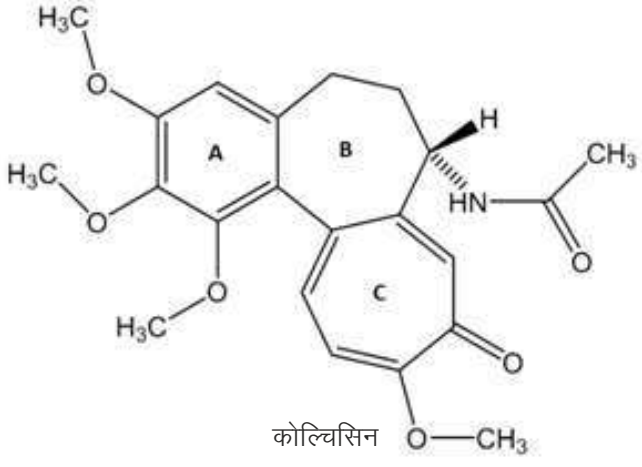

कोल्चिसिन

कोल्चिसिन एक अत्यधिक फोटोरिएक्टिव यौगिक है और इसे पराबैंगनी विकिरण द्वारा β–लुमिकोल्चिसिन, γ–लुमिकोल्चिसिन और α–लुमिकोल्चिसिन में परिवर्तित किया जाता है; ये फोटो उत्पाद (*फोटोइसोमर्स*) कोल्चिसिन के ट्रोपोलोन रिंग के साइक्लोइसोम एराइज़ेशन द्वारा बनते हैं जो कोल्चिसिन में सबसे पेचीदा हिस्सा है, α–लुमिकोल्चिसिन एक डाईमर है β–लुमिकोल्चिसिन केवल सांद्रित घोल पर लंबे समय तक विकिरण के प्रभाव से बनता है।

कोल्चिसिन प्रेरित बहुगुणिता के प्रभाव :–

बहुगुणिता पौधों पर प्रभावों की एक विस्तृत श्रृंखला का कारण बनता है, लेकिन ये प्रभाव प्रजातियों पर निर्भर करते हैं और एक ही प्रजाति के भीतर विभिन्न स्तर की बहुगुणिता, विषमयुग्मजता का स्तर और विभिन्न तंत्रों पर निर्भर करते हैं जो जीन अंश प्रभाव, जीन साइलेंसिंग, विशिष्ट लक्षणों और जीन परस्पर क्रिया के विनियमन से संबंधित हैं।

पादप आकारिकी पर प्रभाव :–

प्रेरित बहुगुणिता से बड़ी संख्या में रूपात्मक प्रभाव प्राप्त हुए हैं। हालांकि, बहुगुणिता के तत्काल प्रभावों में से एक नाभिक सामग्री में वृद्धि के कारण कोशिका के आकार में वृद्धि है जो उनके विकास और विकास के दौरान कोशिका विभाजन में कमी का कारण बनता है। यह "गीगास प्रभाव" ज्यादातर व्यावसायिक महत्व वाले जैसे पत्तियों, बीजों और फूलों के विभिन्न पौधों के अंगों में देखा जाता है।

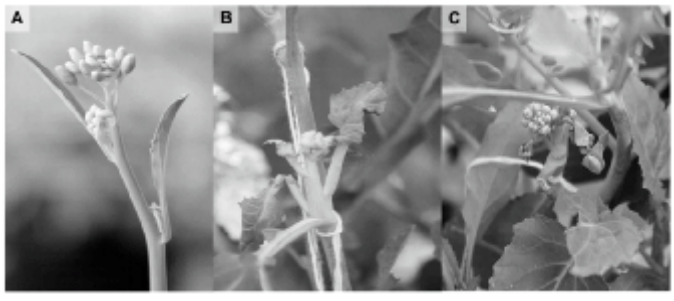

ब्रैसिका ओलेरेसिया x *ब्रैसिका जंसिया* (2n=ABC) संकर : A- सामान्य कलियां और B,C- कोल्चिसिन के प्रयोग के बाद विकृत कलियाँ, उभरे हुए तने, मोटी और घुमावदार पत्तियां (चित्रः मवठी एवं साथी, 2019)।

कोल्चिसिन के माध्यम से सरसों में पौधे की ऊंचाई, प्राथमिक शाखाएं, माध्यमिक शाखाएं प्रति पौधे, पत्ती की लंबाई और चौड़ाई, डंठल की लंबाई, कोरोला की लंबाई और चौड़ाई और सिलिका की लंबाई में वृद्धि देखी गई। तिल (*सेसमम इण्डिकम*), मेंथी (*ट्रिगोनेल्ला फोएनुम फ़राएउ*), चमेली तंबाकू (*निकोटियाना अल्ता*), लिली (*लिलियम*) और आर्किड (*डेंड्रोबियम नोबेल*) में दोहरीकरण के कारण पत्तियों की संख्या, शाखाओं की संख्या, पौधे की ऊंचाई और शाखाओं की लम्बाई में वृद्धि हुई। प्रेरित बहुगुणिता ने गेंदा (*टैगेट्स इरेक्टा*) और गुलदाउदी (*डेंड्रान्थेमा ग्रैंडिफ्लोरा)* में पत्ती के रंगके साथ–साथ पत्तीयों के आकर को भी बढ़ाया है। पेलार्गोनियम (*पेलार्गोनियम ग्रेवोलेंस*), के टेट्राप्लोइड पौधों में पत्तियों के रंग और आकार में सबसे अधिक भिन्नता देखी गई है।

सरसों में पौधों में पराग के आकार में भी लगभग दोगुना अंतर पाया गया, ऑटोटेट्राप्लोइड्स में अधिकांश परागकण द्विगुणित की तुलना में बड़े थे। कोल्चिसिन उपचार के माध्यम से माइटोटिक गुणसूत्र दोगुने होने से साल्विया (*साल्विया कोकिनिया*) में बढ़े हुए पुष्प भागों के साथ बड़े आकार के

पुष्पक्रम का उत्पादन होता है, हालांकि फूल आने में 10–30 दिनों तक की देरी हुई है । फीवरफ्यू (*टैनासेटम पार्थेनियम*) के टेट्राप्लोइड पौधों ने फूलों के वजन और व्यास में वृद्धि की थी, लेकिन इसके द्विगुणित पौधों की तुलना में केवल 50% फूलों का उत्पादन किया। बहुगुणिता पौधों में बढ़े हुए व्यास और फूलों के वजन वाले फूलों की अधिक संख्या का उत्पादन किया है।

पादप कार्यिकी पर प्रभावः–

पादप आकारिकी में स्पष्ट परिवर्तनों के अलावा, बहुगुणिता पौधों की कार्यिकी क्रियाओं जैसे जल शोषण–अवशोषण क्रियाओं पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव दिखा सकता है। सरसों में ऑटोटेट्रापोलॉइड पौधे में द्विगुणित पौधे के अपेक्षाकृत स्टोमेटा रंध्र की लंबाई और चौड़ाई लगभग दोगुनी पाई गयी। फीवरफ्यू (*टैनासेटम पार्थेनियम*), पेटुनिया (*पेटुनिया हाइब्रिडा*), गुलदाउदी (*डेंड्रान्थेमा इंडिकम वेर एरोमैटिकम*) और सेलोसिया (*सेलोसिया अर्जेंटिया*) के बहुगुणि पौधों में प्रति इकाई क्षेत्र में कम आवृत्ति वाले बड़े आकार के रंध्र देखे गए हैं। इन परिवर्तनों ने बहुगुणि पौधों में वाष्पोत्सर्जन दर (समग्र गैसीय विनिमय दर) को कम कर दिया। इसके अतिरिक्त, रिक्तिका के आकार और मोटी पत्तियों में वृद्धि, उच्च जल सामग्री को बनाए रखने की भी अनुमति देती है, जिसका उपयोग सूखे की अवधि के दौरान किया जा सकता है। इसलिए, इन बहुगुणि पौधों को पानी सीमित क्षेत्रों में उगाया जा सकता है और सूखा सहिष्णु जीनोटाइप विकसित करने के लिए अन्य प्रजातियों के साथ भी पैदा किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण कुछ पादप प्रजातियों को गर्म और उच्च तापमान के अनुकूल बनाने में मददगार हो सकता है।

बहुगुणिता पौधों की वृद्धि और कोशिकाओं की भित्ति की संरचना :–

इसके अलावा, पत्तियों के रूपमितीय विश्लेषण से पता चला है कि बहुगुणिता ने एपिडर्मल के नीचे की कोशिकाओं को प्रभावित किया है, सेल आकार में वृद्धि हुई है और वृद्धिशील प्लोइड के साथ प्रति पत्ती ब्लेड में सेल संख्या कम हो गई है। हालांकि, टेट्राप्लोइड्स में पुष्पक्रम के तने का सूखा वजन सबसे अधिक था। कोशिकाओं की भित्ति के लक्षणो के वर्णन से पता चला है कि बुनियादी कार्यिकी प्लोइडी स्तर नकारात्मक रूप से लिग्निन और सेल्युलोज सामग्री के साथ सहसंबद्ध है, और स्टेम ऊतक में मैट्रिक्स पॉलीसेकेराइड सामग्री हेमिसेलुलोज और पेक्टिन के साथ सकारात्मक रूप से सहसंबद्ध है। इसके अलावा, उच्च प्लोइड पौधों ने परिवर्तित शर्करा संरचना प्रदर्शित की। इस तरह के प्रभाव बहुगुणिता के कारण विलंबित विकास से जुड़े है। इसके अलावा, बहुगुणिता कोशिकाओं की भित्ति संरचना में परिवर्तन ने शर्करीकरण उपज को बढ़ावा दिया।

कोल्चिसिन और ट्यूबुलिन के बीच परस्पर क्रिया :–

1968 में कोल्चिसिन के कार्यिकी के लक्ष्य को ट्यूबुलिन के रूप में पहचाना गया था। विभिन्न प्रकार के एंटी–ट्यूबुलिन एजेंटों के बीच कोल्चिसिन बाइंडिंग साइट इनहिबिटर (सीबीएसआई)। कोल्चिसिन–ट्यूबुलिन से जुड़कर सूक्ष्मनलिकाएं के पोलीमराइजेशन को निष्क्रिय करने का काम करता है। उच्च आत्मीयता के साथ कोल्चिसिन α/β–ट्यूबुलिन के लिए बाध्यकारी है, और यह बाध्यकारी परिणाम घुमावदार ट्यूबुलिन डाईमर में होता है और कोल्चिसिन और α–ट्यूबुलिन के बीच एक स्टेरिक जुड़ाव के कारण एक सीधी संरचना लेने के लिए रोकता है, जो सूक्ष्मनलिका असेंबली को रोकता है। कोल्चिसिन–ट्यूबुलिन के बीच परस्पर क्रिया तापमान, pH और ट्यूबुलिन की सांद्रता पर अत्यधिक निर्भर करती है।

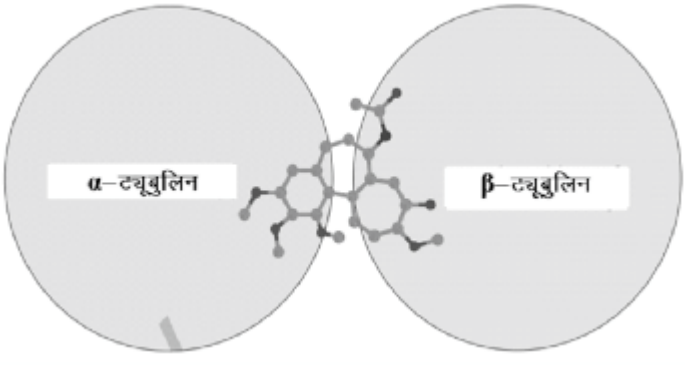

कोल्चिसिन–ट्यूबुलिन के बीच परस्पर क्रिया

बहुगुणिता और पत्तियों की संरचना और कार्यो के बीच संबंध :–

सामान्य तौर पर, द्विगुणित माता–पिता की तुलना में एलोटेट्राप्लोइड संकर के लिए संरचनात्मक और कार्यात्मक लक्षणों के बीच अधिक संबंध है। माता–पिता और संकरों में कोई महत्वपूर्ण संरचना–कार्य सहसंबंध नहीं है। सी(4) पादप *एट्रिप्लेक्स कॉन्फर्टिफोलिया* (डाइकोट) में, द्विगुणित माता–पिता में रूपात्मक संरचना और शारीरिक कार्य के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है। एलोटेट्राप्लोइड संकरों में बढ़ी हुई फेनोटाइपिक एकीकरण, बढ़ी हुई विस्तरित विलक्षणता या

बस अलग संरचना–कार्य संबंधों के कारण हो सकता है।

प्रकाश संश्लेषण पर बहुगुणिता का प्रभाव :–

सी(4) पादप *एट्रिप्लेक्स कॉन्फर्टिफोलिया* (डाइकोट) में प्रति कोशिका प्रकाश संश्लेषक दर, प्रति कोशिका डीएनए की सामग्री, और बंडल शीथ एंजाइम राइबुलोज 1,5–बिस्फोस्फेट कार्बोक्सिलेज (*आरयूबीपीसी*) और एनएडी–मैलिक एंजाइम प्रति सेल की गतिविधियों को सूत्रगुणता स्तर के साथ सहसंबद्ध किया गया, और ये पाया गया की जीन और जीन उत्पादों के बीच निकट आनुपातिक संबंध है। मेसोफिल और बंडल शीथ कोशिकाओं की मात्रा और सूत्रगुणता स्तर के बीच एक उच्च सहसंबंध भी था। प्रति सेल डीएनए की सामग्री, प्रति सेल RuBPC की गतिविधि, और कोशिकाओं की मात्रा प्रति सेल प्रकाश संश्लेषक दर के साथ सहसंबद्ध है। मेसोफिल कोशिकाओं में बंडल शीथ कोशिकाओं की तरह प्लोइड में परिवर्तन की प्रतिक्रिया नहीं होती है। मेसोफिल कोशिकाओं में प्रति कोशिका क्लोरोफिल सामग्री अलग–अलग प्लोइडल स्तरों पर स्थिर है, प्लोइड में वृद्धि के साथ बंडल शीथ कोशिकाओं की तुलना में जीवकोष के आयतन में कम वृद्धि हुई है, और प्लोइड में वृद्धि के साथ फोस्फोनोलपाइरूवेट कार्बोक्सिलेज गतिविधि या सामग्री और पाइरूवेट पाई डाइकिनेज गतिविधि का कोई महत्वपूर्ण सहसंबंध नहीं है। प्रति इकाई पत्ती क्षेत्र में प्रकाश संश्लेषक कोशिकाओं की संख्या द्विगुणित से हेक्साप्लोइड तक बढ़ने के साथ उत्तरोत्तर कम होती है, लेकिन उसके बाद ऑक्टाप्लोइड और डिकैप्लोइड पौधों में स्थिर हो जाती है। प्रति पत्ती क्षेत्र में कोशिकाओं की संख्या जीवकोष आयतन के साथ सहसंबद्ध नहीं है। प्रति इकाई पत्ती क्षेत्र में औसत प्रकाश संश्लेषक दर द्विगुणित में सबसे कम है, जो 4*ग*, 6*ग* और 8*ग* में समान थी, और डिकैप्लोइड में उच्चतम थी। प्रति पत्ती क्षेत्र में प्रकाश संश्लेषक दर प्रति पत्ती क्षेत्र में डीएनए सामग्री के साथ अत्यधिक सहसंबद्ध है।

कीट प्रतिरोध और तनाव सहनशीलता :–

कई फसलों में विभिन्न जैविक और अजैविक तनाव सहिष्णुता और एक विशेष वातावरण में अनुकूलन क्षमता पर बहुगुणिता के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। बहुगुणिता पौधों में बेहतर पोषक तत्व ग्रहण, ठंड सहनशीलता और कीट/कीट और रोगजनकों के लिए बेहतर प्रतिरोध हो सकता है। पौधों में बहुगुणिता को प्रेरित करने के कई तरीके हैं जो जैविक और अजैविक तनावों के खिलाफ उनकी अनुकूलन क्षमता और प्रतिरोध को बढ़ा सकते हैं। यह नाभिकीय सामग्री को बढ़ाकर भी प्राप्त किया जा सकता है जो अंततः जीन अभिव्यक्ति को बढ़ाता है जिसके परिणामस्वरूप द्वितीयक चयापचयों का उत्पादन बढ़ जाता है। रासायनिक सुरक्षा सहित ये मेटाबोलाइट्स न केवल पौधे के प्रतिरोध और सहनशीलता तंत्र को बढ़ाते हैं, बल्कि वे दवा की दृष्टि से भी मूल्यवान हैं। उनका उपयोग उनके माता–पिता के पौधों की तुलना में विविध अंतर्जात माध्यमिक चयापचयों वाले माता–पिता के बीच परबहुगुणित बनाने के लिए भी किया जा सकता है।

स्वैम्प रोज़मैलो (*हिबिस्कस मोस्चुटोस*) के प्रेरित ट्रिपलोइड्स और टेट्राप्लोइड्स पौधों ने अपने द्विगुणित समकक्षों की तुलना में हवाई फाइटोफ्थोरा रोग के लिए प्रतिरोध दिखाया जो गंभीर रूप से संक्रमित थे। इसके अलावा, बगीचे के इम्पेतिन्स (*इम्पेतिन्स वॉलरियाना*) में, कृत्रिम रूप से उत्पादित टेट्राप्लोइड्स ने डाउनी मिल्ड्यू के लिए बेहतर प्रतिरोध प्रदर्शित किया।

ऐसे कई पौधे हैं जिनका उपयोग सजावटी और औषधीय दोनों उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है जैसे कि सेलोसिया फूल (*सेलोसिया अर्जेंटिया*), जिसने टेट्राप्लोइड पौधों में बायोमास और फार्मास्युटिकल यौगिकों (*अल्कलॉइड, फिनोल, एंथोसायनिन*) में वृद्धि दिखाई है। इसी तरह, अफीम पोस्त (पापावर सोम्निफरम) में, कोल्चिसिन उपचारित पौधों में क्षारीय सामग्री में 25–50% की वृद्धि देखी गई। जबकि, फीवरफ्यू (टैनासेटम पार्थेनियम) के बहुगुणिता पौधों में पार्थेनोलाइड की मात्रा में वृद्धि देखी गई।

प्रयोग में लेनें के तरीके :–

विभिन्न अनुप्रयोग विधियों में, रसायनों के प्रयोग से पौधों के बहुगुणिता के स्तर में परिवर्तन अधिक प्रभावी साबित हुआ है। कई रसायन पादप कोशिकाओं में कोशिका विभाजन चक्र (माइटोसिस) की प्रगति को अवरुद्ध करने के लिए अवरोधक के रूप में काम करते हैं, जैसे कोल्चिसिन जिसका उपयोग कोशिका चक्र के मेटाफ़ेज़ को अवरुद्ध करने के लिए किया जाता है। एंटी–माइटोटिक अनुप्रयोग के तरीके पौधे के प्रकार पर निर्भर करते हैं। सबसे सरल, आसान और प्रभावी तरीकों में से एक बड़ी संख्या में ऐसे पौधों का उपयोग करना है जिसमें छोटे और सक्रिय रूप से बढ़ने वाले मेरिस्टेमेटिक ऊतक होते हैं। अंकुरों को भिगोया जा सकता है या एपिकल मेरिस्टेम को अलग–अलग एक्सपोज़र समय या आवृत्तियों पर विभिन्न सांद्रता के एंटी–माइटोटिक एजेंट समाधान में डुबोया जा

सकता है। पुराने पौधों की शाखाओं का भी उपयोग बहुगुणिता प्रेरण के लिए किया जा सकता है, लेकिन यह विधि सफल नहीं है क्योंकि इससे बड़ी संख्या में साइटोकाइमेरस उत्पन्न हो सकते हैं। हालांकि, उप–अक्षीय और छोटे अक्षीय विभज्योतक ऊतकों का उपचार प्रभावी माना जाता है, जबकि बढ़ती कलियों को कपास, लैनोलिन और अगर की मदद से गुणसूत्र दोहरीकरण एजेंटों के रसायनों के समाधान में डुबो कर उपयोग में लिया जा सकता है। । कभी–कभी वेटिंग एजेंट और सर्फेक्टेंट का उपयोग रसायन के प्रभाव को बढ़ाने के लिए भी किया जाता है। टेट्राप्लोइडी प्रेरण के लिए सबसे सफल तरीका बीज उपचार है। सूखे या अंकुरित बीजों की तुलना में उभरती हुई जड़ों वाले पूर्व–अंकुरित बीजों का कोल्चिसिन उपचार प्रभावी होता है क्योंकि इसके माध्यम से बड़ी संख्या में टेट्राप्लोइड पौधों का उत्पादन होता है।

❑❑❑

सरसों की खली व उनकी गुणवत्ता

अनुभूति शर्मा, प्रशान्त यादव, पूर्णिमा सोगरवाल

भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

सरसों का तेल खाना बनाने, शरीर पर मालिश करने, साबुन, उच्च कोटि का ग्रीस, अचार एवं मसालों को बनाने के काम आता हैं। सरसों की पत्तियों को सब्जी के रूप में काम लिया जाता है जो अति पौष्टिक होती है। तेल निकालने के बाद बची खली को पशुओं को खिलाया जाता है, जिससे पशु को पौष्टिक तत्व मिलते हैं जो उनकी शारीरिक क्षमता को बढ़ाता है। खली (तेल निकालने के बाद बचे बीज के अवशेष) का उपयोग प्रोटीन युक्त (35–40%) आहार के रूप में पशुओं के लिए किया जाता है। इस खली को खाद के रूप में भी खेतों में प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसमें 4–5 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है जो मिट्टी की उर्वरक क्षमता को बढ़ाता है। जिससे फसल की बढ़वार अच्छी होती है और फसल उत्पादन भी बढ़ता है।

भारत में खाद्य फसलों के बाद तिलहन दूसरी मुख्य अर्थव्यवस्था है, जो कि 28.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर उगाये जाते हैं और 32.88 मिलियन टन उत्पादन है। भारत, कनाडा और चीन के बाद तीसरे नम्बर का सबसे बड़ा सरसों उत्पादक और सातवां सरसों तेल का निर्यातक देश है। राई–सरसों भारत में तिलहनी फसलों का महत्वपूर्ण समूह है। ये फसलें मानव आहार में खाद्य तेल के स्त्रोत के रूप में आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। इस समूह में 8 कृषि फसलें सम्मिलित हैं। इनमें विभिन्न फसलें उदाहरणार्थ–भारतीय सरसों, तोरिया, पीली सरसों, भूरी सरसों, गोभी सरसों, करन राई, बनारसी राई तथा तारामीरा सम्मिलित हैं। राया (*ब्रैसिका जंसिया*), गोभी सरसों *(ब्रैसिका नैपस),* अफरीकन सरसों *(ब्रैसिका कैरीनाटा),* तोरिया *(ब्रैसिका रापा)* व तारामीरा *(ईरूका स्टाइवा)* सरसों जाति की 'रबी' में उगाई जाने वाली मुख्य तिलसनी फसलें हैं जिनके तेल का प्रयोग मुख्य रूप से खाद्य तेल के रूप में किया जाता है।

सरसों के तेल के साथ–साथ सरसों के बीज का उपयोग करने से सब्जी का स्वाद भी बढ़ता है। इसका तेल सभी चर्म रोगों से रक्षा करता है। सरसों के बीज में कई प्रकार के औषधिय रसायन होते है। जैसे–इसमें कैरोटीनॉइड, फेनोलिक पदार्थ और ग्लूकोसिनोलेट्स पाए जाते हैं। सरसों के बीज में सेलेनियम और मैग्नीशियम ज्यादा मात्रा मे पाया जाता है इन दोनों में एंटी–इनफ्लामेटरी गुण होते है। सरसों के तेल को रोज खाने से अस्थमा, सर्दी में होने वाली दिक्कतों में लाभ मिलता है। सरसों के बीज में 38–42 प्रतिशत तेल पाया जाता है। इस तेल में 42–60 प्रतिशत इरुसिक एसिड तथा 10–12 प्रतिशत ओलिक एसिड, 6–8 प्रतिशत ओमेगा–3, अल्फा–लिनोलेनिक एसिड और 10–15 प्रतिशत ओमेगा–6, लिनोलिक एसिड होता हैं।

सारणी 1: सरसों की पत्ति, बीज तथा जड़ में पोषक तत्वों की मात्रा (प्रति 100 ग्राम)

क्र. सं.	रासायनिक घटक	पत्ती	जड़	बीज
1	प्रोटीन	2.4 ग्राम	1.9 ग्राम	24.94 ग्राम
2	वसा	0.4 ग्राम	0.3 ग्राम	28.76 ग्राम
3	कुल कार्बोहाइड्रेड	4.3 ग्राम	8.8 ग्राम	34.94 ग्राम
5	रेशा	1.0 ग्राम	2.0 ग्राम	14.7 ग्राम
7	कैल्शियम	160 मिलीग्राम	111 मिलीग्राम	521 मिलीग्राम
8	फास्फोरस	48 मिलीग्राम	65 मिलीग्राम	83.12 मिलीग्राम

9	आयरन	2.7 मिलीग्राम	1.6 मिलीग्राम	9.98 मिलीग्राम
10	पोटैशियम	297 मिलीग्राम	447 मिलीग्राम	682 मिलीग्राम
11	एस्कार्बिक अम्ल	73 मिलीग्राम	0.21 मिलीग्राम	132%
12	राइबोफ्लेविन	0.14 मिलीग्राम	0.12 मिलीग्राम	3.0 मिलीग्राम
13	नियासिन	0.8 मिलीग्राम	0.7 मिलीग्राम	7.89 मिलीग्राम
14	थायमिन	0.06 मिलीग्राम	0.05 मिलीग्राम	0.543 मिलीग्राम
15	बीटा कैरोटिन	1825 माइक्रोग्राम	45 माइक्रोग्राम	0.1%

(स्रोत–ल्युंग 1980)

आज के समय में वैज्ञानिको द्वारा प्रयोग कर कई तरह की खाद तैयार की गयी है जिससे फसल मे बढ़ोत्तरी हुई है लेकिन प्राप्त होने वाली फसल रसायन युक्त हो गयी है। फूल–फल और सब्जियों वाले पौधों के लिए ये वरदान की तरह हैं इसके अलावा यह एक बहुत ही अच्छा प्राकृतिक कीटनाशी भी है।

सरसों खली क्या है ?

सरसों के दानों से तेल निकालने के बाद जो पदार्थ बच जाता है उसे सरसों खली (mustard cake) कहते हैं। यह तेल की धानी जहां पर तेल भी निकाला जाता है वहाँ से आसानी से प्राप्त हो सकती है। तेल निकालने के बाद बची खली पशुओं को खिलाया जाती है, जिससे पशु को पौष्टिक तत्व मिलते हैं जो उनकी हर तरह की शारीरिक क्षमता को बढ़ाता है। डेयरी वाले और दूध बेचने वाले इसे गाय, भैंस आदि जानवरों को भूसे के साथ मिलाकर खिलाते हैं। इस खली को खाद के रूप में भी खेतों में प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसमें 4–5 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती है।

सरसों खली में पोषक तत्व :–

सरसों खली नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम का एक बहुत अच्छा स्रोत है इसके अलावा इसमें कई प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्व भी भरपूर मात्र में पाये जाते हैं जो पौधे की अच्छी वृद्धि के लिए बहुत आवश्यक हैं। इसमे पाये जाने वाले सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे–कैल्शियम, मैग्निशियम, सल्फर, ज़िंक, कॉपर, आयरन और मैंग्नीज पौधों में फूल और फल बनने की प्रक्रिया को बढ़ाते हैं ।

सरसों खली के उपयोग :–

1. बगीचे में :

सरसों की खली का बगीचे में कई तरह से उपयोग कर सकते हैं जोकि उर्वरक और कीट रोधी के रूप में पौधों के काम आता हैं सरसों की खली फूलों के लिए बहुत ही अच्छी खाद है।

2. खाद के रूप में :

परंपरागत रूप से भारत में सरसों की खली का उपयोग पौधों के लिए खाद के रूप प्रयोग किया जाता है। विशेषकर फूल–सब्जी और अन्य फलों वाले पौधों पर यह एक धीरे–धीरे श्रावित होने वाला उर्वरक (स्लो रिलीज फर्टीलाइजर) है जिसमें सभी तत्व पाए जाते हैं जो पौधों के विकास के लिए आवश्यक होते हैं।

3. कीटनाशक के रूप में :

मिट्टी में सरसों की खली का पाउडर मिलाने से जड़ों में फफूंद नहीं लगता है और पौधे का स्वास्थ्य भी बना रहता है। इसके अलावा यह कई कीटों को पौधो के पास आने से भी रोकता है।

सरसों खली को हाथ से या ग्राइन्डर से चूर्ण बनाकर फूलों या सब्जी वाले पौधे की मिट्टी पर एक लेयर फैला दें।इसके अलावा 20–25 ग्राम सरसों खली चूर्ण को मिट्टी में मिलाकर गमलों में एक इंच की लेयर बिछा दें जिससे यह एक स्लो रिलीज फर्टीलाइजर की तरह काम करता रहेगा।

4. तरल खाद (Liquid Fertilizer) के रूप में :

फूल वाले पौधों जैसे गुलदाउदी, गुलाब, डहेलिया आदि के

लिए किण्वन सरसों खली अमृत की तरह काम करता है लेकिन पहले इसको उपयोग करने का सही तरीका जान लेना चाहिए।

उपयोग करने का तरीका :

सबसे पहले 250 ग्राम सरसों की खली (पूरी तरह से भरा हुआ 4–5 मुट्ठी) 5 लीटर पानी में भिगोएँ। भिगोने के लिए कोई मटका या मिट्टी का बर्तन मिल जाए तो बहुत अच्छा रहेगा नहीं तो प्लास्टिक की बाल्टी में अच्छी तरह से घोल लें।

अब इसको ढ़क करके गर्मी के मौसम है तो 3–4 दिनों के लिए छोड़ दें और अगर सर्दियाँ हैं तो 7–8 दिन के लिए छोड़ दीजिये ताकि यह अच्छे से मिल जाए। अगर 1–2 दिन से ज्यादा भी हो जाए तो कोई दिक्कत नहीं है। रोज सुबह किसी छड़ी से घोल को हिला–मिला दें तो और अच्छा रहेगा।

4–5 दिनों के बाद एक गाढ़ा घोल तैयार हो जाएगा जिसमे से तेज़ गंध भी आएगी जोकि सल्फर आदि के किण्वन के कारण आती है। इस घोल के 100 मिली मे 1 लीटर यानि घोल का 10 गुना पानी मिला लें। इस घोल को 10 से 30 दिन तक ऐसे ही रखे रहे तो यह और भी ताकतवर होता जाएगा।

याद रखना होगा कि बिना पानी मिलाऐं, इसका उपयोग पौधों पर न करे अन्यथा पौधे खराब हो सकते हैं। पतले घोल के 100 मिली को 15 दिनों में 1 बार उपयोग कर सकते हैं।

गमले की मिट्टी तैयार करते समय :

सरसों खली के चूर्ण को किसी डब्बे में रख लें और जब भी किसी गमले की नई मिट्टी तैयार करें तो उसमे 1–2 मुट्ठी सरसों खली मिला दें जिससे पौधे में फंगस लगने का भय पूरी तरह से खत्म हो जाएगा। कैक्टस, अडेनियम और छाये में रहने वाले पौधों पर सरसों खली खाद के रूप में उपयोग नहीं करें।

सरसों की खली में पोषक तत्व अच्छी मात्रा में पाये जाते है जो कि फसल उत्पादन तथा पशुओं के स्वास्थ्य के लिए गुणकारी है। किसान उपरोक्त प्रकार से सरसों की खली को प्रयोग में लेकर लाभ कमा सकते हैं।

❑❑❑

सरसों के तेल का सेवनः सेहत एवं औषधीय गुणों से भरपूर

ओम प्रकाश[1], पल्लवी यादव[2], ब्रह्म प्रकाश[1]

[1]भा.कृ.अनुप. – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

[2]चंद्र भानु गुप्ता कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बक्शी का तालाब, लखनऊ

सरसों का वैज्ञानिक नाम *ब्रैसिका जंसिया* है, जिसे विभिन्न भाषाओं में अलग–अलग नामों से जाना जाता है। सरसों के तेल के अलावा इसे आम बोल चाल में कड़वा तेल के नाम से भी जाना जाता है। इसे अंग्रेजी में मस्टर्ड ऑइल; तेलुगु में– अवन्यून; मलायम में– कदुगेना और मराठी में मोहरीच कहा जाता है। सरसों के तेल को बीजों से निकाला जाता है। यह तेल जायका बढ़ाने के साथ–साथ भोजन की पौष्टिकता भी बढ़ाता है। ज्यादातर उत्तर भारत में इस्तेमाल होने वाले इस तेल को खाने के अलावा भी सांस्कृतिक, धार्मिक समारोहों और अन्य गतिविधियों में भी इस के तेल को भी इस्तेमाल किया जाता है।

सरसों के तेल में उपलब्ध पौष्टिक तत्वों की मात्रा

पोषक तत्व का नाम	पोषक तत्व की मात्रा (प्रति 100 ग्राम)
ऊर्जा	884 किलो कैलोरी
कुल लिपिड (वसा)	100 ग्राम
वसीय अम्ल (कुल संतृप्त)	11.582 ग्राम
वसीय अम्ल (कुल एकल असंतृप्त)	59.187 ग्राम
वसीय अम्ल (कुल पॉली असंतृप्त)	21.23 ग्राम

सरसों के तेल के प्रकार :–

परिशुद्ध सरसों का तेल :

सरसों के बीजों से यह तेल मशीनों के जरिए निकाला जाता है। इसका स्वाद कड़वा होता है। इस प्रकार के तेल का इस्तेमाल भारत में खाना बनाने के लिए किया जाता है। रिफाइंड सरसों का तेल काले, भूरे या पीली सरसों के बीजों से निकाला जाता है।

ग्रेड–1 (कच्ची घानी) :

इसे आमतौर पर कच्ची घानी के नाम से जाना जाता है। यह सरसों के तेल का शुद्ध रूप है। यही वजह है कि अधिकतर भारतीय गृहिणी भोजन बनाने के लिए इसी तेल का इस्तेमाल करना पसंद करती हैं। इस प्रकार का सरसों का तेल स्वास्थ्य के लिए बेहद फायदेमंद माना जाता है।

ग्रेड–2 :

इस तेल का इस्तेमाल भोजन बनाने के लिए नहीं, बल्कि थेरेपी के लिए किया जाता है।

सरसों के तेल को बहुत पौष्टिक माना जाता है, इसलिए इसका प्रयोग खाना बनाने के लिए भी किया जाता है। इसकी तासीर गर्म होने से सर्दियों में यह अत्यंत लाभकारी माना जाता है। इसलिए आप किसी भी मौसम में सरसों के तेल में बना खाना खा सकते हैं।

जोड़ों के दर्द/गठिया/मांसपेशियों की समस्या में फायदेमंद :–

आज से नहीं, बल्कि वर्षों से सरसों के तेल को जोड़ों के दर्द, गठिया और मांसपेशियों में होने वाले दर्द से निजात पाने के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है। इससे जोड़ों व मांसपेशियों की समस्या को दूर रखने में मदद मिल सकती है। वहीं, सरसों के तेल में मौजूद ओमेगा–3 फैटी एसिड भी जोड़ों के दर्द और गठिया की समस्या में सहायक साबित हो सकता है। सरसों के तेल की मालिश करने से शरीर की मांसपेशियां मजबूत होती हैं और रक्त संचार भी बेहतर होता है। जीवाणुरोधी होने की वजह से सरसों के तेल में औषधीय गुण भी भरपूर है। पुराने जमाने में बच्चों को संक्रमण से बचाने के लिए इससे मालिश भी की जाती थी। यही नहीं, सर्दी जुकाम होने पर बच्चों एवं वयस्कों की नाक, कान और नाभी में इसे नियमित रूप से लगाते हैं।

सरसों का तेल तासीर में गर्म होता है और कई तरह के फंगस और बैक्टीरिया से शरीर की रक्षा करती है। लेकिन विटमिन–ई से भरपूर होने के कारण यह तेल हमारी त्वचा को मुलायम बनाए रखने का काम करता है। सरसों तेल में बना खाना खाने से हमारी त्वचा की अंदरूनी कोशिकाओं को पोषण मिलता है और त्वचा में नमी बनी रहती है। इससे त्वचा में चमक के साथ ही सुखी नहीं होती है।

दिल के स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद :–

सरसों का तेल संपूर्ण स्वास्थ्य को बनाए रखने का काम कर सकता है। सरसों का तेल कोलेस्ट्रॉल स्तर को नियंत्रित कर शरीर के सबसे अहम भाग हृदय को भी स्वस्थ्य रखने का काम कर सकता है। दरअसल, एनसीबीआई (नेशनल सेंटर फॉर बायोटेक्नोलॉजी इंफॉर्मेशन) की वेबसाइट में प्रकाशित एक वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार, सरसों का तेल मोनोअनसैचुरेटेड और पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड के साथ–साथ ओमेगा–3 और ओमेगा–6 फैटी एसिड से समृद्ध होता है। ये दोनों फैटी एसिड मिलकर इस्केमिक हृदय रोग (रक्त प्रवाह की कमी के कारण) की आशंका को 50 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं। वहीं, एक दूसरे शोध में बताया गया है कि सरसों के तेल को हाइपोकोलेस्टेरोलेमिक (कोलेस्ट्रॉल कम करने वाला) और हाइपोलिपिडेमिक (लिपिड–लोअरिंग) प्रभाव के लिए भी जाना जाता है। यह खराब कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम कर सकता है और शरीर में अच्छे कोलेस्ट्रॉल के स्तर को बढ़ा सकता है, जिससे हृदय रोग के जोखिम को कम किया जा सकता है। सरसों का तेल कोलेस्ट्रॉल को संतुलित रखने में मददगार होता है।

सरसों के तेल का प्रयोग करने से कोरोनरी हार्ट डिसीज का खतरा भी कम होता है। सरसों का तेल कोलेस्ट्रॉल को संतुलित रखने में मददगार होता है। रिफाइंड ऑयल की तुलना में सरसों के तेल में खाना पकाने से हृदय रोग की संभावना लगभग 70 फीसदी तक कम हो जाती है।

कैंसर की बीमारी के उपचार में कारगर :–

एक वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि एलिल आइसोथियोसाइनेट (सरसों के तेल) में एंटी कैंसर गुण होते हैं, जो कैंसर सेल्स के विकास को रोकने का काम कर सकते हैं। इस अध्ययन में कोलन कैंसर से प्रभावित चूहों पर सरसों, मकई और मछली के तेल के असर का परीक्षण किया गया। इस शोध में पाया गया कि कोलन कैंसर को रोकने में मछली के तेल की तुलना में सरसों का तेल अधिक प्रभावी साबित हुआ। ऐसे में माना जा सकता है कि सरसों के तेल के फायदे कैंसर जैसी समस्या से बचे रहने में भी मदद कर सकते हैं।

दांत संबंधी समस्या के दूर करने में कारगर :–

सरसों के तेल के लाभ दांत संबंधी समस्याओं में भी कारगर साबित हो सकते है। विशेषज्ञों के मुताबिक, इस तेल को हल्दी के साथ इस्तेमाल करने पर मसूड़ों की सूजन और पेरियोडोंटाइटिस (मसूड़ों से जुड़ा संक्रमण) से निजात मिल सकती है। वहीं, सरसों तेल और नमक का उपयोग मौखिक स्वच्छता में भी सुधार करने का काम कर सकता है। सरसों तेल, हल्दी और नमक को पेस्ट की तरह उपयोग कर सकते हैं। इसके लिए आधा चम्मच सरसों का तेल, एक चम्मच हल्दी और आधा चम्मच नमक मिलाकर पेस्ट बना लें। फिर इस पेस्ट से दांतों और मसूड़ों पर कुछ मिनट तक मालिश करें। इसे हफ्ते में तीन–चार बार उपयोग कर सकते हैं।

अस्थमा में आराम :–

अस्थमा श्वसन तंत्र से संबंधित एक समस्या है। हालांकि अस्थमा का अभी तक कोई स्थाई इलाज नहीं आया है लेकिन गर्म सरसों के तेल में कपूर को डालकर मालिश करने से अस्थमा में भी आराम मिलता है। इससे राहत पाने में पीली सरसों तेल के फायदे कुछ हद तक सहायक साबित हो सकते हैं। दर असल, इस संबंध में कई वैज्ञानिक शोध किए गए हैं, जिनसे पता चलता है कि सरसों के तेल में पाया जाने वाला सेलेनियम अस्थमा के प्रभाव को कम करने में सहायक साबित हो सकता है।

मस्तिष्क की कार्य क्षमता बढ़ाने में मददगार :–

सरसों के तेल के लाभ मस्तिष्क की कार्य क्षमता को बढ़ावा देने में भी उपयोगी हो सकते हैं। एनसीबीआई की वेबसाइट पर प्रकाशित औषधीय अनुसंधान प्रतिवेदन के मुताबिक, सरसों के तेल में पाए जाने वाले वसीय अम्ल उपकोशिकीय झिल्ली की संरचना में बदलाव करने में मदद कर सकता है, जिससे मस्तिष्क सम्बन्धित एंजाइमों की गतिविधि को नियंन्त्रित किया जा सकती है। यह मस्तिष्क के कार्य के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस आधार पर यह माना जा सकता है कि सरसों का तेल दिमागी कार्य क्षमता को बढ़ावा देने में भी मददगार साबित हो सकता है।

सरसों का तेल एंटी बैक्टीरियल, एंटीफंगल और एंटीइंफ्लेमेटरी गुणों से समृद्ध होता है तथा वायरस, बैक्टीरिया, आदि को पनपने नहीं देता हैं।

इसमें मौजूद एंटी–इंफ्लेमेटरी एजेंट सूजन संबंधी समस्याओं से निजात दिलाने का काम कर सकता है। साथ ही सरसों के तेल में मौजूद एंटीइंफ्लेमेटरी गुण के कारण इसे डिक्लोफेनाक के निर्माण में भी इस्तेमाल किया जाता है, जो एक एंटीइंफ्लेमेटरी दवा है। वहीं, सरसों के तेल से संबंधित एक अन्य शोध से पता चलता है कि इसमें अनावश्यक बैक्टीरिया और अन्य रोगाणुओं के पनपने से रोकने की क्षमता पाई जाती है। इसके अलावा, यह काफी हद तक फंगस के प्रभाव को कम करने में भी सहायक साबित हो सकता है। ऐसे में यह माना जा सकता है कि फफूंद के कारण त्वचा पर होने वाले रैशेज और संक्रमण के इलाज करने में सरसों का तेल मददगार हो सकता है।

पाचन शक्ति भूख बढ़ाने में लाभदायक

सरसों के तेल के सेवन से पाचन शक्ति दुरुस्त रहती है. यह भूख बढ़ाने में भी मदद करता है। भूख नहीं लगने पर भी सरसों का तेल बेहद फायदेमंद साबित हो सकता है।

होंठों की सेहत और सुंदरता के लिए फायदेमंद :–

अगर आप फटे होंठों की समस्या से गुज़र रहे हैं तो सर्दियों की रात में सोने से पहले नाभि पर सरसों का तेल लगाएं। इससे फटे होंठ वापस नर्म व मुलायम हो जाएंगे सरसों का तेल सेहत और सुंदरता दोनों के ही लिए बहुत फायदेमंद है। साथ ही फटे होंठ व त्वचा पर रैशेज के लिए भी इसका इस्तेमाल किया जा सकता है।

बालों के लिए :–

कई लोग सरसों के तेल को बालों में लगाने के लिए इस्तेमाल करते हैं, जो बालों और उनकी जडो के लिए लाभकारी साबित हो सकता है। इसके उपयोग से बालों के विकास में मदद मिल सकती है। इसके लिए सरसों के तेल में मौजूद मोनोअनसैचुरेटेड फैटी एसिड, ओमेगा 3 और 6 फैटी एसिड मदद कर सकते हैं। इसके अलावा, इस तेल में एंटीफंगल और एंटीबैक्टीरियल प्रभाव भी पाए जाते हैं, जो रूसी की समस्या को पनपने से रोक सकते हैं। इससे सिर की खुजली की समस्या से भी राहत मिल सकती है। ऐसे में कहा जा सकता है कि बालों में सरसों का तेल लगाने के फायदे काफी हद तक उपयोगी साबित हो सकते हैं। यह बालों की जड़ों को पोषण देकर रक्तसंचार बढ़ाता है जिससे बालों का झड़ना बंद हो जाता है। इसमें ओलिक एसिड और लीनोलिक एसिड पाया जाता है, जो बालों की बढ़त के लिए अच्छे होते हैं।

वजन घटाने में मदद :–

इसमें विटामिन जैसे थियामाइन, फोलेट व नियासिन काफी मात्रा में पाए जाते हैं जिससे इससे वजन घटाने में मदद मिलती है। इसकी मालिश से भी शरीर की एक्स्ट्रा चर्बी घटती है। सरसों का तेल बढ़ते वजन को नियंत्रित करने में भी सहायक होता है। जो लोग नियमित रूप से इस तेल में बना भोजन करते हैं उन्हें पेट निकलने की समस्या सामान्यतौर पर नहीं होती है।

नाक में खुजली और सूखापन जैसी समस्याओं में राहत

जुकाम होने, नाक बंद होने या बहने पर 2 बूंद सरसों का तेल नाक में डालने से जुकाम में तुरंत आराम मिलता। नाक में खुजली और सूखापन जैसी समस्याओं में भी यह राहत देता है।

यह एक बड़ी वजह है कि जो लोग सरसों के तेल में बना खाना खाते हैं, उन्हें सर्दी–खाँसी, सीने में दर्द, गले में खराश और खांसी जैसी समस्याएं अन्य लोगों की तुलना में बहुत ही कम होती हैं।

सरसों के तेल के सेवन से होने वाले नुकसान :–

इस तेल के अधिक सेवन से कुछ समस्याएं भी हो सकती हैं, जो इस प्रकार से हैं:

सरसों के तेल में इरुसिक नाम का वसीय अम्ल मौजूद होता है, जो हृदय को नुकसान पहुंचा सकता है। एक रिपोर्ट के अनुसार, इरुसिक एसिड हृदय की मांसपेशियों में लिपिडोसिस (ट्राइग्लिसराइड्स का जमाव) का कारण बन सकता है और हृदय के ऊतकों को क्षतिग्रस्त कर सकता है।

कुछ लोगों को त्वचा पर सरसों तेल के इस्तेमाल से एलर्जी हो सकती है।

❑❑❑

नैनो यूरिया : प्रयोग विधि, विशेषता एवं फसल पर प्रभाव

लक्ष्मण प्रसाद कुमावत[1], राजेश कुमार दौतानियाँ[2],
[1]गुजरात कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी, गुजरात
[2]सस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

नैनो यूरिया इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर कोऑपरेटिव लिमिटेड (इफको) द्वारा तैयार किया गया नत्रजन उर्वरक है। नैनो यूरिया तरल की 500 मिली लीटर की एक बोतल सामान्य यूरिया के एक बैग (45 किलोग्राम) यानी एक बोरी के बराबर होगी। इसके प्रयोग से किसानों की लागत कम होगी। नैनो यूरिया तरल का आकार छोटा होने के कारण इसे पॉकेट में भी रखा जा सकता है जिससे परिवहन और भंडारण लागत में भी काफी कमी आएगी। इफको ने दुनिया में पहली बार नैनो यूरिया तरल तैयार किया है। इससे फसलों की पैदावार बढ़ेगी और किसानों की आमदनी भी बढ़ सकेगी।

नैनो यूरिया :–

इफको नैनो यूरिया के एक कण का आकार लगभग 30 नैनोमीटर होता है। सामान्य यूरिया की तुलना में इसका आयतन अनुपात लगभग 10,000 गुना अधिक होता है। इसके अतिरिक्त, अपने अति–सूक्ष्म आकार और सतही विशेषताओं के कारण नैनो यूरिया को पत्तियों पर छिड़कने से पौधों द्वारा आसानी से सोख लिया जाता है। पौधों के जिन भागों में नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, ये कण वहां पहुंचकर संतुलित मात्रा में पोषक तत्व प्रदान करते हैं। सामान्य यूरिया के प्रयोग से पैदा होने वाले पर्यावरण संबंधी मौजूदा समस्या–ओं जैसे ग्रीनहाउस गैस, नाइट्रस ऑक्साइड और अमोनिया उत्सर्जन, मिट्टी में अम्लता की मात्रा बढ़ना और पानी के स्रोतों के यूट्रोफिकेशन आदि के समाधान में नैनो यूरिया तरल पूरी तरह सक्षम है। पौधे की नाइट्रोजन आवश्यकता को पूरा करने के लिए सामान्य यूरिया उर्वरक की तुलना में इसकी कम मात्रा की आवश्यकता होती है।

नैनो यूरिया की विशेषताए :–

नैनो यूरिया नैनो तकनीकी पर आधारित एक अनूठा उर्वरक है जो कि विश्व में पहली बार विकसित किया गया है तथा भारत सरकार द्वारा अनुमोदित भी है। नैनो यूरिया में वजन के हिसाब से नैनो रूप में 4 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है। नैनो यूरिया में मौजूद नाइट्रोजन फसल नाइट्रोजन की आवश्यकता को प्रभावी ढंग से पूरा करती है। इसमें पारंपरिक यूरिया की तुलना में बेहतर उपयोग क्षमता होती है। नैनो यूरिया अधिकांश फसलों/पौधों के लिए नाइट्रोजन के स्रोत के रूप में उपयोग के लिए उपयुक्त है। किसान अपने फसल के उत्पादन को बढ़ाने के लिए खेतो में उर्वरक का उपयोग करता है। जिसमें खेतों में डाली जाने वाली प्रमुख खाद यूरिया और डी.ए.पी. हैं। फसल की क्रांतिक अवस्थाओं पर नैनो यूरिया का पत्तियों पर छिड़काव करने से नाइट्रोजन की सफलता पूर्वक आपूर्ति हो जाती है, जिससे उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है, क्योंकि इसका इस्तेमाल पत्तियों पर छिड़काव के रूप में होता है और यह सामान्य दानेदार यूरिया की तरह जमीन में जाकर मिट्टी को भी दूषित नहीं करते है। अभी किसान अपने खेतों में 45 किलोग्राम यूरिया बैग इस्तेमाल करके जितना फसल उत्पादन कर पाते हैं वही अब 500 ग्राम नैनो यूरिया का प्रयोग करके उत्पादन कर पाएंगे।

नैनो यूरिया की उपयोग विधि :–

नैनो यूरिया का 2 से 4 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए। नाइट्रोजन की कम आवश्यकता वाली फसलों में 2 मिलीलीटर एवं नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता वाली फसलों में 4 मिलीलीटर तक नैनो यूरिया प्रतिलीटर पानी की दर से उपयोग किया जा सकता है। अनाज, तेल, सब्जी एवं कपास इत्यादि फसलों में दो बार तथा दलहनी फसलों में एक बार नैनो यूरिया का उपयोग किया जा सकता है, जिसमें पहला छिड़काव अंकुरण या रोपाई के 30 से 35 दिन बाद तथा दूसरा छिड़काव फूल आने के 1 सप्ताह पहले किया जा सकता है। एक एकड़ खेत के लिए प्रति छिड़काव लगभग 150 लीटर पानी की मात्रा पर्याप्त होती है।

नैनो यूरिया का पर्यावरण पर प्रभाव :–

निक्षालन (लीचिंग) और गैसीय उत्सर्जन के जरिये खेतों से हो रहे पोषक तत्वों के नुकसान से पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन पर असर हो रहा है। इसे नैनो यूरिया के प्रयोग से

कम किया जा सकता है क्योंकि इसका कोई अवशिष्ट प्रभाव नहीं है। भारत में खपत होने वाले कुल नाइट्रोजन उर्वरकों में से 82 प्रतिशत हिस्सा यूरिया का है और पिछले कुछ वर्षों में इसकी खपत में अप्रत्याशित वृद्धि दर्ज की गई है। यूरिया के लगभग 30–50 प्रतिशत नाइट्रोजन का उपयोग पौधों द्वारा किया जाता है और बाकी लीचिंग, वाष्पीकरण और बह जाने के परिणाम स्वरूप त्वरित रासायनिक परिवर्तन के कारण हानि हो जाती है जिससे पोषक तत्वों के उपयोग की क्षमता कम हो जाती है। यूरिया के अतिरिक्त उपयोग से नाइट्रस ऑक्साइड नामक ग्रीनहाउस गैस बनती है जिससे ग्लोबल वार्मिंग में वृद्धि होती है। नैनो यूरिया तरल पर्यावरण हितैषी, उच्च पोषक तत्व उपयोग क्षमता वाला एक अनोखा उर्वरक है जो लंबे समय में प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग कम करने की दिशा में एक टिकाऊ समाधान है, क्योंकि यह नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम कर देता है तथा मृदा, वायु एवं जल निकायों को दूषित नहीं करता है। ऐसे में यह पारंपरिक यूरिया का एक उपयुक्त विकल्प है।

फसलों की पैदावार पर प्रभाव :–

इफको का दावा है कि नैनो यूरिया तरल को पौधों के पोषण के लिए प्रभावी व असरदार पाया गया है इसके प्रयोग से फसलों की पैदावार बढ़ती है तथा पोषक तत्वों की गुणवत्ता में सुधार होता है। नैनो यूरिया भूमिगत जल की गुणवत्ता सुधारने तथा जलवायु परिवर्तन व टिकाऊ उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव डालते हुए ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में अहम भूमिका निभा सकती है। किसानों द्वारा नैनो यूरिया तरल के प्रयोग से पौधों को संतुलित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होंगे और मिट्टी में यूरिया के अधिक प्रयोग में कमी आएगी। गौरतलब है कि यूरिया के अधिक प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषित होता है, मृदा स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचता है, पौधों में बीमारी और कीट का खतरा अधिक बढ़ जाता है, फसल देर से पकती है और उत्पादन कम होता है (साथ ही फसल की गुणवत्ता में भी कमी आती है) नैनो यूरिया तरल फसलों को मजबूत और स्वस्थ बनाता है तथा फसलों को गिरने से बचाता है।

कैसे बढ़ेगी किसानों की आय?

इफको का दावा है कि नैनो यूरिया किसानों के लिए सस्ता है और इससे फसल पैदावार में बढ़ोत्तरी होगी। इस तरह जहां किसानों की लागत कम होगी। वहीं पैदावार ज्यादा होने से उनकी कमाई ज्यादा होगी।

कितना बढ़ेगा उत्पादन?

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद संस्थानों के राज्य कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों और किसानों के जरिए अखिल भारतीय स्तर पर 11,000 से अधिक स्थानों और 40 से अधिक फसलों पर कराए गए परीक्षणों में यह सिद्ध हुआ है कि फसलों की उपज में औसतन 8 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई है।

नैनो यूरिया (तरल) न केवल फसल उत्पादकता को बढ़ाता है बल्कि यह सामान्य यूरिया की आवश्यकता को 50 प्रतिशत तक कम कर सकता है। यही नहीं, तरल नैनो यूरिया के इस्तेमाल से उपज, बायोमास, मृदा स्वास्थ्य और उपज की पोषण गुणवत्ता में भी सुधार होता है। वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने अनुसंधान के बाद नैनो यूरिया तरल को स्वदेशी और प्रोप्राइटरी तकनीक के माध्यम से कलोल स्थित नैनो जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र में तैयार किया है। 'यह नवीन उत्पाद आत्मनिर्भर भारत और आत्मनिर्भर कृषि की दिशा में एक सार्थक कदम है। इसके 500 मिलीलीटर की एक बोतल में 40,000 पीपीएम नाइट्रोजन होता है जो सामान्यतः यूरिया की एक बोरी के बराबर नाइट्रोजन पोषक तत्व प्रदान करेगा।

उपयोग करने के दिशा निर्देश तथा सावधानियॉं :–

- उपयोग से पहले अच्छी तरह से बोतल को हिलाएं ।
- प्लेट फैन नोजल का उपयोग करें।
- सुबह या शाम के समय छिड़काव करें तेज धूप, तेज हवा और ओस हो तब इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।
- यदि नैनो यूरिया के छिड़काव के 12 घंटे के भीतर बारिश होती है तो छिड़काव को दोहराना चाहिए।
- जैव–उत्प्रेरक जैसे सागरिका 100 प्रतिशत घुलनशील उर्वरकों और कृषि रसायनों के साथ मिलाकर उपयोग किया जा सकता है लेकिन जार परीक्षण करके ही प्रयोग करें।
- बेहतर परिणाम के लिए नैनो यूरिया का उपयोग इसके निर्माण की तारीख से 2 वर्ष के अंदर कर लेना चाहिए।
- नैनो यूरिया विषमुक्त है फिर भी सुरक्षा की दृष्टि से फसल पर छिड़काव करते समय मास्क और दस्ताने का उपयोग करने की सलाह दी जाती है।
- नैनो यूरिया को बच्चों और पालतू जानवरों की पहुंच से दूर ठंडी और सूखी जगह पर ही रखें।

नैनो यूरिया के लाभ

- ✓ यह सभी फसलों के लिए उपयोगी है।
- ✓ सुरक्षित एवं पर्यावरण के अनुकूल टिकाऊ खेती हेतु उपयोगी है।
- ✓ बिना उपज प्रभावित किए यूरिया तथा अन्य नाइट्रोजन युक्त यूरिया की बचत करता है।
- ✓ वातावरण प्रदूषण की समस्या से मुक्ति यानि मिट्टी हवा और पानी की गुणवत्ता में सुधार के साथ ही अधिक उर्वरक उपयोग दक्षता।
- ✓ उत्पादन वृद्धि के साथ उत्पाद गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
- ✓ परिवहन एवं भंडारण खर्चों में कमी एवं सुगम परिवहन किया जा सकता है।

कहां और कैसे हुआ परीक्षण ?

दुनिया में पहली बार इफको द्वारा गुजरात के कलोल स्थित नैनो बायोटेक्नोलॉजी रिसर्च सेंटर में इफको की पेटेंटेड तकनीक से नैनो यूरिया (तरल) विकसित किया गया है। इसका परीक्षण भारत सरकार के जैव प्रौद्योगिकी विभाग के दिशानिर्देशों के साथ–साथ आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) द्वारा विकसित अंतरराष्ट्रीय दिशा निर्देशों, जिन्हें विश्व स्तर पर अपनाया और स्वीकार किया जाता है, के अनुसार जैव विविधता और विषाक्तता के लिए किया गया है। नैनौ यूरिया तरल का प्रयोग मनुष्यों, जानवरों, पक्षियों, छोटे जीवों और पर्यावरण के लिए पूरी तरह सुरक्षित है। इफको नैनो यूरिया कृषि और खाद्य प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए सटीक और खेती–बाड़ी की दिशा में उठाया गया एक सार्थक कदम है।

नैनो यूरिया का दाम क्या हैं ?

500 ग्राम इफकोनैनो यूरिया की कीमत महज 240 रु निर्धारित की गई है जोकि 50 किलोग्राम यूरिया से 10 रु कम है । नैनो यूरिया का उत्पादन 1 जून 2021 से शुरू हो गया और अब यह बाजार में बिक्री के लिए उपलब्ध है। भारत में प्रत्येक साल लगभग 350 लाख टन यूरिया का इस्तेमाल होता है। इफको नैनो यूरिया आ जाने से इसकी खपत में कमी होगी तथा सरकार जो उर्वरक के लिए 600 करोड़ रुपए की सब्सिडी देती है वह भी कम हो सकेगी।

❑❑❑

सरसों के भूसे का महत्त्व एवं प्रबंधन

राजेश कुमार दौतानियाँ, ओमा शंकर भुखर, कुलदीप सिंह
सस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

कृषि उत्पादों में खाद्यान्नों के बाद दूसरा स्थान तिलहनों का आता है। तिलहनी फसलों को कृषि योग्य भूमि के लगभग 14–15 प्रतिशत भाग पर उगाते हैं। राजस्थान सरसों के उत्पादन में भारत का एक अग्रणी राज्य है। साल 2019–20 देश में सरसों लगभग 7.52 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर उगाई गई जिससे लगभग 28–30 मिलियन टन भूसा मिला तथा मुख्यरूप से सरसों के कुल क्षेत्रफल का आधे से भी ज्यादा भाग राजस्थान में है जिससे लगभग 13–15 मिलियन टन भूसा मिल जाता है जिसका किसान कोई खास फायदा नहीं ले पाता है। राजस्थान जैसा राज्य जहाँ किसान की अर्थ–व्यवस्था प्रमुख रूप से पशु–पालन पर निर्भर है और हर दूसरे या तीसरे साल सूखा पड़ता है। सूखे के साल में पशु पालकों को चारे के अभाव के कारण भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इन पर स्थितियों में जहाँ अन्य चारे की उपलब्धता नहीं हो वहाँ सरसों का भूसा पशुओं के लिये चारे का अच्छा विकल्प हो सकता है। सरसों फसल कम लागत और कम सिंचाई सुविधा में भी अन्य फसलों की तुलना में सबसे अधिक लाभ प्रदान करती है। यह भी देखा गया है कि विभिन्न उत्पादन तकनीकी के प्रयोग से सरसों की पैदावार में बढ़ोतरी की जा सकती है। सरसों के भूसे (अवशेष) का समुचित उपयोग एवं प्रबंधन बहुत आवश्यक है। सरसों के भूसे में ऐसा कोई भी हानि–कारक पदार्थ नहीं होता है जिससे पशुओं को नुकसान हो। सरसों का भूसा स्वाद–हीन एवं कम पाचकता वाला है, जिसके कारण इसे पशु कम खाते हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु अनेक संस्थानों ने कई तकनीकियाँ विकसित की है जिनके प्रयोग से सरसों के भूसे की पौष्टिकता, पाचकता एवं स्वाद बढ़ाकर पशुधन के लिये उत्तम भूसा तैयार किया जा सकता है।

भूसे से कार्बनिक खाद बनाना :–

सरसों के भूसे से कार्बनिक खाद बनाने के लिये एक आयताकार गड्ढा जिसकी लम्बाई 2 मीटर चौड़ाई 1.5 मीटर एवं गहराई 1 मीटर हो तैयार करते हैं। इस गड्ढे में 80 किग्रा सरसों का भूसा 20 किग्रा ताजा गोबर 10 किग्रा भारी मिट्टी एवं 1 किग्रा. यूरिया डालते हैं। इस मिश्रण को अच्छी तरह मिलाते हुए पानी का छिड़काव करते हैं तथा एक महीने बाद 1500–2000 केंचुए एवं 200 ग्राम *ट्राइकोडर्मा विरिडी* मिलाते हैं तथा ढक देते हैं। मिश्रण को 10–15 दिन बाद पलट दें तथा 25–30 प्रतिशत नमी बनाये रखें। इस विधि से लगभग 90–100 दिन में सरसों के भूसे से अच्छी कार्बनिक खाद बनकर तैयार हो जाती है।

पशु आहार में सरसों के भूसे का उपयोग :–

देश में पशुपालन से आने वाली सबसे प्रमुख बाधा पर्याप्त मात्रा में चारा गुणवत्ता की कमी एवं इसकी समय पर उपलब्धता नहीं होना है। चारे में गुणवत्ता की कमी एवं समय पर इसकी उपलब्धता न होने के कारण हर साल पशु–पालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। जिस साल सूखा पड़ता है, उस साल यह समस्या और भी अधिक विकराल हो जाती है। तथा चारे के आभाव में पशु–पालकों को अपने उत्पादक पशुओं को मजबूरी में सस्ती दरों पर बेचना पड़ता है। जिससे कभी–कभी छोटे एवं मध्यम वर्ग के पशु पालक परिवारों की अर्थव्यवस्था लम्बे समय के लिए अस्त–व्यस्त हो जाती है।

सरसों के भूसे की गुणवत्ता :–

गुणवत्ता में सरसों के चारे की कमी एवं इसकी समय पर उपलब्धता नहीं होने की समस्या अति गंभीर होने के बावजूद भी सरकार एवं किसान इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दे रहे हैं एवं कम गुणवत्ता वाले चारे जैसे सरसों का भूसा इत्यादि का ऐसे ही नुकसान कर रहे हैं। सरसों के भूसे को किसान या तो स्वयं जला देते हैं या मुफ्त में बहुत कम कीमत पर औद्योगिक इकाई वालों को ईधन के लिए बेच देते हैं। सरसों का भूसा प्राय किसान को मार्च–अप्रैल में मिलता है एवं इसी समय से किसान के पास सूखे चारे की कमी होना प्रारंभ होती है। प्रायः सरसों के भूसे के बारे में यह धारणा है कि इसमें पोषक तत्व कम होते हैं एवं यह कठोर, विषैला, स्वाद–हीन व कम पाचकता वाला होता है जिससे इसे खिलाने से पशु कमजोर व बीमार हो जाते हैं।

यूरिया से भूसे का उपचार :–

इस विधि का प्रमुख उद्देश्य भूसे की प्रोटीन एवं उर्जा मान में वृद्धि करना है। ये उद्देश्य भूसे एवं सूखे चारे का यूरिया उपचार करने से पूरे हो जाते हैं। ऐसा दो कारणों से होता है। पहला कारण यूरिया अमोनिया में बदलकर भूसे की पाचकता में वृद्धि

करता है तथा दूसरा रोमन्थी पशुओं के रोमन्थ में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं, जो की भूसे के पाचन के लिए जिम्मेवार है, उनकी क्रिया–शीलता के लिए अमोनिया एक अत्यंत महत्वपूर्ण पोषक तत्व है, वह यूरिया उपचारित भूसे के द्वारा उन्हें मिल जाती है। रोमन्थ में अमोनिया की उचित मात्रा में उपस्थित होने से इन सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है। जिस कारण से यूरिया उपचारित भूसे का अच्छा पाचन होता है। फलस्वरुप भूसे की पाचनशील प्रोटीन जो की अनुपचारित भूसे में शून्य होती है, वह बढ़कर 5–6 प्रतिशत तक हो जाती है जिससे इसके द्वारा प्राप्त कुल पाचक तत्व के प्रतिशत में वृद्धि होती है।

उपचार की विधि :–

इस तकनीक के द्वारा 50 किलोग्राम यूरिया खाद की बोरी से लगभग 12.5 क्विंटल भूसे या अन्य सूखे चारों का उपचार किया जा सकता है। उपचार करने के लिए एक क्विंटल भूसे या अन्य सूखे चारों को 2–3 मीटर के गोल घेरे या आयताकार में बिछाया जाता है। यदि संभव हो सके तो किसान उपचार करने के लिए सुविधा अनुसार किसी भी माप की खाई या गड्ढा, चौकोर अथवा आयताकार आकार के खोद सकते हैं, जिसमे हमेशा उपचार किया जा सके। उपचार करने से पहले इनमें पॉलिथीन बिछा देनी चाहिए या फिर उसको अंदर से मिट्टी के लेप से लीप देना चाहिए। अब 4 किलोग्राम यूरिया खाद को किसी प्लास्टिक या लोहा के ड्रम में लगभग 50–60 लीटर साफ पानी में घोल बनाकर, भूसे की बिछी हुई परत पर छिड़काव किया जाता है। छिड़काव के बाद भूसे को पैरों से अच्छी तरह दबाया जाता है ताकि अंदर की हवा बाहर निकल जाये। फिर दबे हुए भूसे पर दुबारा दूसरी परत बिछा कर यूरिया घोल का छिड़काव कर पुनः पैरों से अच्छी तरह दबा कर अंदर की हवा बाहर निकल देना चाहिए। इस प्रकार एक के ऊपर एक परत बिछा दिया जाता है। तत्पश्चात् उपचारित भूसे को पॉलिथीन की चादर से ढक दिया जाता है। पॉलिथीन के स्थान पर सूखी घास या यूरिया की खाली बोरी से बनी चादर से भी ढकाजा सकता है। ढ़ेरी का आकार गुंबदनुमा हो जिससे बरसात होने पर चारे को नुकसान ना पहुंचे। यदि संभव हो तो इस ढ़ेरी को मिट्टी से लिपाई करके भी रखा जा सकता है क्योंकि किसान भाई आमतौर पर सूखे चारे, उपले आदि को इसी प्रकार से रखते हैं। तीन सप्ताह तक उपचारित भूसे को ऐसे ही रहने दिया जाता है। इस दौरान इसके अंदर यूरिया से अमोनिया गैस बनती है जो भूसे एवं अन्य सूखे चारे को अधिक पौष्टिक तथा पाचक बनाती है। इस विधि के द्वारा सरसों के भूसे के साथ ही साथ अन्य और सूखे चारों जैसे बाजरा कड़वी, ज्वार कड़वी, धान का पुआल आदि को भी उपचारित किया जा सकता है।

पशुओं को भूसा कैसे खिलाए :–

उपचारित भूसे को पशुओं को खिलाने से पहले कम से कम एक या दो घंटे हवा में खुला छोड़ देते हैं, जिससे अमोनिया गैस की गंध कम हो जाए। उपचारित भूसे को हरे चारे के साथ या अकेले ही उसी प्रकार से खिलाया जाता है जैसे– किसान अन्य सूखे चारे को खिलाता है। आमतौर पर देखा गया है कि पशु शुरुआत में एक सप्ताह तक उपचारित भूसे को अच्छी प्रकार से नहीं खाते परन्तु उसके बाद उपचारित भूसे को पशु काफी चाव से खाने लगते हैं तथा यह भूसा अन्य अनुपचारित भूसे से अधिक स्वादिष्ट लगता है। इस विधि से तैयार भूसे को छह माह से अधिक उम्र के सभी पशु जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी व ऊंट को उपचारित भूसा अकेले या दाना आदि मिलाकर खिलाया जा सकता है। पशु को उपचारित भूसे से अधिक लाभ मिले इसके लिए भूसे में लवण मिश्रण प्रति पशु 30 से 40 ग्राम भी देना चाहिए एवं इसे नियमित रूप से खिला सकते हैं।

प्रायोगिक सावधानियाँ :–

तीन सप्ताह बाद उपचारित भूसे की ढेरी को एक तरफ से खोला जाता है। इस उपचारित भूसे में अमोनिया गैस की तीखी गंध आती है तथा भूसे का रंग गहरा पीला हो जाता है। हाथ से पकड़ने पर यह मुलायम महसूस होता है। ढेरी में से उपचारित भूसा प्रतिदिन के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही निकालना चाहिए और इसके बाद ढेरी को पुनः बंद कर देना चाहिए जिससे गैस अंदर ही रहे। यूरिया खाद की बताई गई मात्रा ही प्रयोग में लेनी चाहिए, अधिक मात्रा का इस्तेमाल करने से विषाक्तता हो सकती है जो की पशु की मृत्यु का कारण भी बन सकती है। यूरिया खाद के घोल को भी पशुओं की पहुंच से दूर रखना चाहिए। यूरिया खाद की मात्रा पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है, अधिक मात्रा नुकसान–दायक है। इसे पानी की बताई गई मात्रा में भली–भाँति घोलकर एवं हमेशा साफ पानी को ही प्रयोग मे लाना चाहिए। यूरिया का घोल भूसे के ऊपर समान रूप से छिड़के। जब ढेरी बनाएं तो समय पर भूसे को अच्छी प्रकार से दबाना चाहिए। किसान ढेरी को पॉलिथीन की चादर अथवा सूखी घास या यूरिया की खाली बोरी से अच्छी तरह ढ़क देना चाहिए। ढेरी से चारा सावधानी से निकाल कर पुनः उसे ढक देना चाहिए। इस

विधि में आने वाली अमोनिया की गंध को अधिक मात्रा में सूंघ लेने से बेहोशी आ सकती है। अतः उपचार ऐसी जगह ना करें जहाँ उठना–बैठना या आना–जाना अधिक होता है।

यूरिया उपचारिता से लाभ :–

यूरिया उपचारित विधि से सरसों, ज्वार, बाजरा, मक्का, गेहूं के भूसे या कड़बी आदि चारों की गुणवत्ता बढ़ा कर उपयोग में ला सकते हैं। यूरिया उपचारित चारे से पशु को अधिक पाचन–शील पोषक तत्व मिलते हैं, जिससे ना केवल पशुओं के दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी होती है बल्कि उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। यूरिया उपचारित भूसे को खिलाने से लगभग आधा से एक किलोग्राम तक दूध में बढ़ोतरी हो जाती है यह इतनी ही दिए जाने वाले दाने की मात्रा बचाई जा सकती है।

पोषक तत्वों की मात्रा

तत्व (%)	गन्ने की खोई (भूसा)	सरसों का भूसा	धान का भूसा
कार्बनिक पदार्थ (%)	95.0	87.7	83.1
एन. डी. एफ.	70.1	80.0	72.0
ए. डी. एफ	44.3	65.8	48.5
सेलुलोज	40.3	40.4	31.5
हेमी सेलुलोज	25.8	18.4	23.5
कच्ची प्रोटीन	3.4	2.6	3.5

निष्कर्ष :–

फसल कटाई के बाद खेत में बचे सरसों के भूसे (अवशेष) को जलाने से न सिर्फ जमीन की उर्वरा शक्ति घटती है बल्कि वातावरण पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। इसका इस्तेमाल जमीन की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में किया जा सकता है। इसके दोहरे फायदे हैं, मुक्त पर्यावरण की रक्षा होगी साथ ही उपज बढ़ने से किसान की आय में भी इजाफा होगा। सरसों फसल के भूसे को फ्री में देने या बेचने से अच्छा है की भूसे को प्रयोग में लेकर आमदनी बढ़ा सकते है । भूसे/अवशेष जलाने से मिट्टी की ऊपरी परत में मौजूद सूक्ष्म जीवों को नुकसान होता है। इससे मिट्टी की जैविक गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

❑❑❑

फसल उत्पादन में फॉस्फोरस की उपयोगिता

दिलखुश मीणा[1], मुरलीधर मीणा[2], चेतन कुमार दोतानियाँ[3]

[1]इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

[2]भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

[3]स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

फसल उत्पादन मे फॉस्फोरस एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा फसलों में फॉस्फोरस जीवन निर्वाह के लिए अति आवश्यक हैं क्योंकि यह जड़ों की वृद्धि मे महत्त्वपूर्ण योगदान अदा करता है। पौधें मिट्टी में उपलब्ध फॉस्फोरस को आसानी से अवशोषण कर लेते है। फॉस्फोरस पौधों में चलनशील होता हैं। यह आसानी से पुराने से नये ऊतक मे चला जाता है इसलिए फॉस्फोरस की कमी के लक्षण पुराने पत्तों पर सबसे पहले दिखाई देते हैं। पौधें फॉस्फोरस का अवशोषण ऑर्थोफॉस्फोरस आयन के रुप मे ग्रहण करते हैं। पौधें फॉस्फोरस का मृदा से अवशोषण विसरण द्वारा करते है। फॉस्फोरस सरसों, राई, मूगफली, तिल, सोयाबीन जैसी तिलहनी फसलों मे तेल और प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाता है तथा यह दलहनी फसलों में जड़ पिंड के निर्माण में सहायक है जो राइजोबियम की गतिविधि को बढ़ाता है तथा वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है। फॉस्फोरस के प्रयोग करने से फसलों में शर्करा की मात्रा, बीजों की गुणवत्ता तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता और लवणीय प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है।

फसलों मे नाइट्रोजन के बाद फॉस्फोरस एक मुख्य पोषक तत्त्व है जिसको पौधे मृदा में से आर्थोफास्फेट आयन के रुप मे ग्रहण करते है। पौधों को कुछ सीमा तक प्राकृतिक स्त्रोतों (वायुमंडल, वर्षा जल आदि) से नाइट्रोजन का प्रदाय होता रहता है, लेकिन फॉस्फोरस प्राप्त करने का कोई प्राकृतिक साधन नहीं है। फसलों को उगाने से फॉस्फोरस निरंतर कम होता रहता है, भूमि का बहुत सा फास्फेट अविलय होने के कारण पौधे नहीं ले पाते है, अतः उवर्रको से फसल उत्पादन मे वृद्धि तभी संभव हो सकती है, जब हम मिट्टी की जाँच के आधार पर इसकी समुचित मात्रा में प्रयोग कर सकें। फॉस्फोरस पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए अतिआवश्यक होता है। यह पौधों की वृद्धि के साथ–साथ फसलों को उखड़ने से भी बचाता है। फास्फेट फसलों को प्रतिकूल मौसम जैसे सूखा, कीट–व्याधि, लवणता से बचाने में मदद करता है। फॉस्फोरस पौधों में ऊर्जा को सग्रंहीत करता है और उसका स्थानांतरण करता है। जिन फसलों में फॉस्फोरस की मात्रा अधिक होती है, उन्हें अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होती है क्योंकि फास्फेट फसलों मे जल उपयोग क्षमता को बढ़ाता है।

मृदा मे फॉस्फोरस की मात्रा :–

भारतीय कृषि में फॉस्फोरस को किंगपिन के रूप में जाना जाता है। मिट्टी में फॉस्फोरस की उपलब्धता निम्न, मध्यम और उच्च है। मृदाओं में फॉस्फोरस की कुल मात्रा 0.02 से 0.10% तक होती है। मृदा मे फॉस्फोरस मुख्यतः काबंनिक तथा अकार्बनिक रुप मे पाया जाता है। एक औसत कृषि योग्य मृदा मे लगभग 0.1% कुल फॉस्फोरस होता है। मृदा मे इसकी मात्रा पैतृक पदार्थ, जलवायु, अपक्षय की प्रकृति तथा वनस्पति के प्रकार पर निर्भर करती है। एल्युमिनियम मृदाओं मे फॉस्फोरस की मात्रा सबसे अधिक होती है, क्योंकि इसमें अधिक क्ले होता है। लेटेराइट मृदाओं मे फॉस्फोरस की मात्रा सबसे कम होती है। कपास की काली मृदाओं मे इसकी मात्रा मध्यम होती हैं तथा राजस्थान की मरुस्थल मृदाओं मे फॉस्फोरस की मात्रा अधिक होती है।

पौधों मे फॉस्फोरस की मात्रा :–

पौधों मे फॉस्फोरस की मात्रा नाइट्रोजन, पोटैशियम तथा कुछ अन्य पोषक तत्वों की अपेक्षा कम होती है। प्रायः पौधों मे इसकी मात्रा 0.05 से 1.0% तक होती है। बीजों मे इसकी मात्रा अधिक तथा तना एंव जड़ों मे कम होती है। जैसे–जैसे पौधा परिपक्व होता है पत्तियों मे फॉस्फोरस की मात्रा कम होती जाती है क्योंकि फॉस्फोरस का स्थानांतरण बीजों मे होता है।

फॉस्फोरस के कार्य :–

फॉस्फोरस ऊर्जा भंडारण और पौधों की उपापचय प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फॉस्फोरस न्यूक्लिक एसिड का एक संरचनात्मक घटक है और फॉस्फोलिपिड का भी एक घटक है। फॉस्फोरस का कोशिका झिल्ली के विकास में एक विशिष्ट महत्व है। फॉस्फोरस ऊर्जा स्थानांतरण, प्रकाश संश्लेषण, शर्करा के स्थानान्तरण में सहायक तथा पौधे के भीतर पोषक तत्वों की आवाजाही और एक पीढ़ी से दूसरी

पीढ़ी तक आनुवंशिक विशेषताओं के स्थानांतरण में शामिल है। यह फाइटिक अम्ल और फाइटिन के रूप में बीजों में भंडारित होता है। फॉस्फोरस ऊतकों के श्वसन में भी सहायक होता है और ऑक्सीडेस एंजाइम की सक्रियता को प्रोत्साहित करता है। फॉस्फोरस प्रकाश संश्लेषण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह पौधों की पार्श्व तथा रेशेदार जड़ों के निर्माण में सहायक होता है जो पोषक तत्व के अवशोषण के लिए पृष्ठिय क्षेत्र को बढ़ाते हैं। यह फसलों की जल्दी परिपक्वता में सहायक होता है और नाइट्रोजन के हानिकारक प्रभाव को रोकता है। यह अंकुरण (सीडलिंग) स्थापित करने में भी मदद करता है तथा उसके साथ ही जल्दी जड़ विकास और वृद्धि को प्रोत्साहित करता है। यह पौधों के तने को मजबूत करता है और पौधे की गिरने की प्रवृत्ति को कम करता है। यह फसलों में विशेष रूप से अनाज फसलों में जल्दी परिपक्वता लाता है, और अत्यधिक नाइट्रोजन के प्रभावों को कम करता है। यह फलीदार फसलों की जड़ों में स्थित ग्रंथियों की संख्या तथा आकार में वृद्धि करता है जिसके फलस्वरूप वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है। फॉस्फोरस जल उपयोग दक्षता को बढ़ाता है जिससे फसलों में पानी की आवश्यकता कम पड़ती है। यह पौधों द्वारा अन्य तत्व विशेष रूप से पोटैशियम के ग्रहण करने की क्षमता को भी बढ़ाता है। फॉस्फोरस तिलहनी, दलहनी और अनाज वाली फसलों की गुणवत्ता को बढ़ाता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता में भी वृद्धि करता है। यह राइजोबियम की गतिविधि को बढ़ाता है और जड़ ग्रंथियों के निर्माण को बढ़ाता है और वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण को बढ़ाने में मदद करता है। फॉस्फोरस विपणन योग्य उपज का अधिक अनुपात, बेहतर फ़ीड मूल्य और बेहतर सूखा और लवणता प्रतिरोध बढ़ाता है। फॉस्फोरस पौधों में कीटों के आक्रमण और रोगों के सहन करने की क्षमता को बढ़ाता है। फसलों मे फॉस्फोरस नाइट्रोजन के हानिकारक प्रभावों को उदासीन कर देता है।

फास्फेट की कमी के लक्षण :–

फॉस्फोरस की न्यूनता के लक्षण सभी चरणों में दिखाई दे सकते हैं। लेकिन यह युवा पौधों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। अन्य पोषक तत्वों की तुलना में इस तत्व की कमी के लक्षण स्पष्ट दिखाई नहीं देते और इन्हें पहचानना कठिन हो सकता है। फॉस्फोरस की कमी से पौधों का रंग प्राय गहरा हरा ही रहता है पर उनकी निचली पत्तियां पीली होकर सूख जाती है। पौधों की बढ़वार रुक जाती है और उनकी पत्तियां छोटी रह जाती है। जिन पौधों में फॉस्फोरस की कमी होती है, उनमें एंथोसाइएनिन अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाता है क्योंकि पौधों में शर्करा की मात्रा अधिक हो जाती है और प्रोटीन की कमी हो जाती है। जब शर्करा की मात्रा अधिक हो जाती है तो ऐन्थोसायनिन का निर्माण अधिक मात्रा में होता है जिसके कारण पत्तियों का रंग बैंगनी हो जाता है। फॉस्फोरस के अभाव में पर्णवृंत बैगनी रंग का हो जाता है। मूल तंत्र का विकास तथा फलों का उत्पादन कम हो जाता है और पौधे मुड़े हुए वह छोटे रह जाते हैं। तिलहनी और दलहनी पौधों में गहरा रंग होने के अलावा पत्तियां ऊपर की ओर मुड़ जाती है। पौधे बौने और पतले रहते हैं। जड़ों में ग्रंथियों की संख्या एवं उनका आकार कम हो जाता है। मक्का में इसके अभाव से पत्तियां पीली हरी हो जाती हैं। फसल देर से पकती है और भुट्टे भॅली प्रकार से नहीं बन पाते हैं। फॉस्फोरस की कमी वाले पौधे की पत्तियां कार्बोहाइड्रेट के अत्यधिक संचय के कारण तीव्र हरी हो जाती हैं। फॉस्फोरस की कमी से पत्ते विकृत हो जाते हैं और परिगलित हो सकते हैं। सामान्य तौर पर फॉस्फोरस की कमी वाले पौधे पतले, सीधे होते हैं। सबसे पहले उनकी पुरानी पत्तियों का रंग फीका पड़ता है। उनका रंग पीला हरा या कांसे जैसा हो जाता है। ऐसी पत्तियों पर निक्रोसिस रोग के चिकते पड़ जाते हैं। पेड़ों और झाड़ियों में इसकी कमी होने से वृद्धि धीरे–धीरे होती है।

फॉस्फोरस की कमी को दूर करने के उपाय :–

पौधे अपना भोजन पोषक तत्व के रूप में ग्रहण करते है। इसलिए मृदा में जिन पोषक तत्वों की कमी होती है। उन्हीं के अनुसार उपयुक्त उर्वरक उस मृदा में ड़ालने चाहिए। लेकिन फसलों द्वारा उनका कुशल उपयोग उर्वरको के डालने की विधि तथा समय पर निर्भर होता है। यदि उर्वरक ठीक विधि से तथा ठीक समय पर मृदा में मिलाया जाए तो और भी अच्छा असर हो सकता है। फॉस्फोरस कि पौधों को सबसे अधिक आवश्यकता फसल की प्रारंभिक अवस्था में जड़ों के विकास के लिए होती है। सभी फॉस्फोरस उर्वरको में पौधों के लिए प्राप्त फॉस्फोरस धीरे–धीरे मुक्त होता है। फॉस्फोरस मृदा में अचल अवस्था में रहता है। अतः निक्षालन आदि के द्वारा मृदा से नष्ट नहीं होता है। फॉस्फोरस की पौधों को अपनी वृद्धि की प्रारम्भ अवस्था में अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है और सभी फॉस्फोरस उर्वरक पौधों को धीरे धीरे प्राप्त होते हैं। इसलिए फॉस्फोरस उर्वरको की संपूर्ण मात्रा मे बोने से पहले या पौधे लगाने के समय ही प्रयोग करनी चाहिए। इसके अलावा मृदा में फॉस्फोरस की कमी खाद एवं उर्वरको के

उचित मात्रा में प्रयोग से जलोत्सारण में सुधार करके अम्लीय मृदा का पीएच अधिक करके या नियंत्रण करके दूर की जा सकती है।

फसल चक्र :–

जिन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन उपलब्ध होते हैं उन क्षेत्रों में सरसों की फसल से पहले खरीफ में खेत को खाली नहीं छोड़ना चाहिए। शस्य सघनता बढ़ाने हेतु इसे अन्य फसलों के क्रम में उगाया जा सकता है। जिससे मृदा की उर्वरकता और उत्पादकता दोनों बढ़ती है। इसकी खेती करने से आने वाली फसल पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। सरसों पर आधारित फसल चक्र निम्नानुसार लिए जा सकते है। जैसे की मूंग – सरसों, बाजरा – सरसों, बाजरा – सरसों – मूंग, ज्वार – सरसों इत्यादि।

सारांश :–

तिलहनी फसलों में फॉस्फोरस उर्वरक का भी अन्य उर्वरकों के बराबर योगदान रहता है। सरसों की फसल में फॉस्फोरस उर्वरक का समुचित प्रयोग करने से पौधों की जड़ों की बढ़ावर, पौधों की बढ़ावार एवं तना मजबूत होता है। साथ ही यह बीज की गुणवत्ता एवं बीजों के आकार को बढ़ाता है। अतः फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों को लेकर हम अधिक उत्पादन बढ़ा सकते हैं।

❑❑❑

गंधक : सरसों पैदावार के लिए आवश्यक पोषक तत्व

मुकेश प्रजापत[1], दिलखुश मीणा[1], मुरलीधर मीणा[2]

[1]मृदा विज्ञान और कृषि रसायन, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

[2]भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्य तेलों की आपूर्ति करना अति आवश्यक हो गया है। दुसरी ओर दिनों–दिन बढ़ती हुई खाद्य तेल की कीमतें एक गंभीर चुनौती की ओर इशारा कर रही हैं। इस महंगाई को देखते हुए तिलहनी फसलों के उत्पादन को और बढ़ावा देना आज के युग में जरुरी हो गया है। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् की नई–नई तकनीकों और कृषि वैज्ञानिकों की कड़ी मेहनत से तिलहनी फसल उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई। वर्ष 1986–87 में तिलहनी फसल उत्पादन में 11 मिलियन टन से बढ़कर 2020–21 में 37.7 मिलियन टन हो गया है। राजस्थान राज्य का तिलहनी फसल उत्पादन में अग्रणी भूमिका है। तिलहनी फसलों में सरसों की फसल का महत्वपूर्ण योगदान है।

भारत में मुख्य रूप से तिलहनी फसलों की खेती 29.2 मिलियन हैक्टेयर में की जाती है (खाद्य तिलहनी फसलें– मूंगफली, राई/सरसों, तिल, कुसुम, सूरजमुखी, सोयाबीन, रामतिल एवं अखाद्य तिलहनी– फसलें अलसी एवं अरण्डी) जिससे 37.7 मिलियन टन उत्पादन होता है। विश्व में भारत मूंगफली, तिल, अरंडी, कुसुम तथा अलसी के कुल क्षेत्रफल में प्रथम, राई–सरसों में द्वितीय स्थान रखता है। परंतु भारत विश्व के कुल तिलहन उत्पादन का केवल 12 से 15 प्रतिशत ही पैदा करता है। भारत में तिलहन उत्पादकता का औसत केवल 1292 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर है, जो कि विश्व औसत (1700 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर) में से काफी कम है। इसका मुख्य कारण यह है, कि भारत में 80 प्रतिशत तिलहनी फसलें असिंचित क्षेत्रों में उगाई जाती हैं, एवं अधिकतर किसान केवल नत्रजन उर्वरक का ही प्रयोग करते हैं।

सरसों उत्पादन को बढ़ाने के लिए संतुलित मात्रा में आवश्यक पोषक तत्व जरुरी है जिसमे नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर (गंधक), जिंक, तथा बोरॉन पोषक तत्व अति आवश्यक है। गंधक, नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश के बाद चौथा आवश्यक पोषक तत्व है जो सरसों की फसल के उत्पादन को बढ़ावा देने के साथ–साथ सरसों के बीज में तेल की मात्रा ओर गुणवत्ता को भी बढ़ाता है।

भूमि में गंधक की कमी तथा उसके कारण :–

देश की 41 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि में मृदा परीक्षण से ज्ञात हुआ की गंधक (सल्फर) में कमी पाई गई है। मृदा में गंधक का क्रांतिक स्तर 10 मिलीग्राम/किग्रा है। गंधक की कमी का मुख्य कारण अधिक मात्रा में उपयोग में लिए जाने वाले सल्फर रहित उर्वरक जैसे यूरिया, डी.ए.पी., म्यूरेट ऑफ़ पोटाश से हो रहा है। क्षारीय, लवणीय, जल भराव तथा अपर्याप्त कार्बनिक पदार्थ के होने से भूमि में सल्फर तत्व की कमी होती जा रही हैं।

सरसों में गंधक तत्व की उपयोगिता :–

- गंधक सरसों के बीज में तेल की मात्रा, प्रोटीन और गुणवत्ता को बढ़ाता है।
- गंधक सिंचित क्षेत्र में 12 से 48 प्रतिशत तक सरसों के उत्पादन में वृद्धि करता है तो वही बारानी क्षेत्र में 50 प्रतिशत तक उत्पादन में वृद्धि देखी गई है।
- गंधक तिलहनी फसलों में सुड़ौल दानों के निर्माण में भी सहायक है।
- यह गंधक युक्त अमीनों अम्ल जैसे – सिस्टीन एवं मिथियोनिन के संश्लेषण में आवश्यक घटक है। यह अमीनों अम्ल तेल में तीखापन लाकर तेल को स्वादिष्ट बनाते है।
- गंधक विटामिन संश्लेषण में भी सहायता करता है जैसे–थायमीन, बायोटीन विटामिन तथा साथ ही लौह–गंधक–प्रोटीन फेरेडोक्सीन, गंधक ग्लाइकोसाइड के संश्लेषण में भी सहायक है।
- गंधक सल्फेड्रीन प्रोटीन– एस. एच. समूह बनाने में सहायक है, जो पादप में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है।
- गंधक सरसों में विशेष प्रकार के रंग, गंध एवं तीखापन विकसित करने का कार्य करता है जिससे कि इन फसलों का महत्व बढ़ जाता है।

- गंधक को मिट्टी का सुधारक भी कहा जाता है क्योंकि यह मिट्टी के पी.एच. को कम करता है।
- यह नत्रजन की उपलब्धता को बढ़ाता है।
- सल्फर पर्णहरित लवक के निर्माण में योगदान देता है जिसके कारण पत्तियाँ हरी रहती है तथा पौधों के लिए भोजन का निर्माण हो पाता है।

सरसों में गंधक की कमी के लक्षण :–

गंधक की कमी के लक्षण नत्रजन की कमी के लक्षण जैसे दिखाई देते हैं, किन्तु सल्फर की कमी से नई पत्तियाँ अधिक पीले रंग की हो जाती है। गंधक की कमी से सरसों अधिक संवेदनशील होती है, इसमें पत्तियों का निचला हिस्सा लाल–भूरे रंग में बदल जाता है तथा अधिक कमी की स्थिति में पत्तियाँ ऊपर तथा नीचे से बैंगनी रंग की हो जाती हैं व नीचे की ओर कप की तरह मुड़ जाती हैं। गंधक की कमी से पौधा बौना रह जाता है।

गंधक का प्रयोग कब और कैसे करे :–

सभी उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के बाद ही करना चाहिए। मृदा परीक्षण नहीं करवाने की स्थिति में सामान्यतः 20–25 किग्रा/हैक्टर गंधक देना चाहिए। गंधक के उपयोग का उपयुक्त समय अंतिम जुताई से पहले सल्फर युक्त उर्वरक को खेत में छिड़क कर जुताई कर दें या बुआई के समय खेत में छिड़क दें। बुवाई से पहले या बुवाई के समय गंधक की मात्रा देना भूल जाये तो खड़ी फसल में 20–40 दिन की अवस्था में घुलनशील उर्वरकों का पत्तियों पर छिड़काव कर देवें।

सरसों में पोषक तत्व प्रबन्धन :–

सिंचित फसल में 6–8 टन प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद या कम्पोस्ट बुवाई से 20–25 दिन पूर्व खेत में डालकर तैयार करें। सिंचित फसल के लिये 80–90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30–40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 30 किलो पोटाश देवें। नाइट्रोजन की आधी तथा फॉस्फोरस तथा पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई से पूर्व देवें। नत्रजन की शेष मात्रा प्रथम सिंचाई के साथ दें। सरसों की फसल को गन्धक की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है अत; नाइट्रोजन को अमोनियम सल्फेट एवं फॉस्फोरस को सिंगल सुपर फॉस्फेट के द्वारा देना अधिक लाभदायक होता है। सामान्यता 25–40 किलो सल्फर प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय पूर्व मिट्टी में मिला दें।

उर्वरक की सिफारिश :–

गंधक की कमी को दूर करने के लिए सल्फर युक्त उर्वरक का उपयोग करे जैसे अमोनियम सल्फेट, सिंगल सुपर फॉस्फेट, नाइट्रेट सल्फेट, मैंग्निशियम सल्फेट, जिंक सल्फेट, जिप्सम आदि। मृदा नूमने के परीक्षण के आधार पर ही सल्फर की मात्रा देनी चाहिए। मृदा नूमने के सल्फर आकड़े को नीचे दी हुई सारणी से मिलानकर सल्फर की मात्रा तय करे।

मृदा में सल्फर की उपलब्धता	सल्फर उर्वरता वर्ग	सल्फर युक्त उर्वरक की मात्रा (किग्रा/हैक्टेयर)	उत्पादन में वृद्धि प्रतिशत
<5	बहुत कम	40	50–85
5–10	कम	30	20–50
10–15	मध्यम	20	5–20
15–20	उच्च	10	1–5
>20	बहुत उच्च	0	0

सारांश :–

सरसों की पैदावार में बढ़ोतरी के लिए गंधक का अन्य उर्वरकों की भांति 20–40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से करके फसल की गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन ले सकते हैं।

❑❑❑

फसलोत्पादन में पोटाश का प्रबंधन एवं महत्व

चेतन कुमार दौतानियाँ[1], मुरलीधर मीणा[2], राजेश कुमार दौतानियाँ[3]

[1]स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

[2]भा.कृ.अनुप.–सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

[3]सस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

फसलोत्पादन में अन्य पोषक तत्वों के अलावा पोटाश तत्व की भी एक अहम् भूमिका होती है। पौधे में पोटाश जीवन निर्वाह के लिए बुनियादी है। यह प्रकाश संश्लेषण, फसल वृद्धि आदि क्रियाओं में योगदान देता है। यह पौधों के पोषण में कई प्रकार की भूमिका निभाता है। पौधे आसानी से मिट्टी में उपलब्ध पोटाश को अवशोषित कर लेते हैं। पौधे के अंदर पोटाश चलनशील होता है, यह आसानी से पुराने से नये छोटे ऊतक में चला जाता है। इसलिए पोटाश की कमी के लक्षण पुरानी पत्तियों पर सबसे पहले दिखाई देते हैं। पोटाश तिलहनी फसलों, सरसों, राई, तिल, मूंगफली जैसी फसलों में तेल के निर्माण में सहायक है। दलहनी फसलों में राइजोबियम द्वारा नाइट्रोजन के यौगिकीकरण में योगदान तथा नील–हरित शैवाल एवं स्वतंत्र रूप से नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणुओं के लिये पोटाश आवश्यक पोषक तत्व है। पोटाश के प्रयोग करने से फसलों की वृद्धि, दानों की चमक व गुणवत्ता भी बढ़ाने मे अहम भूमिका निभाता है।

आवश्यक पोषक तत्व :–

उर्वरकों से सरसों के उत्पादन में वृद्धि तभी संभव है, जब मिट्टी जांच के आधार पर इनका समुचित मात्रा में प्रयोग किया जाए। पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिये पोटाश आवश्यक है। पोटाश फसलों को मौसम की प्रतिकूलता जैसे–सूखा, ओला, पाला तथा कीड़े–व्याधि आदि से बचाने में मदद करता है। पोटाश जड़ों की समुचित वृद्धि करके फसलों को उखड़ने से बचाता है। पोटाश के प्रयोग से पौधों की कोशिका परतें मोटी होती है और तने को कोष्ठ की परतों में वृद्धि होती रहती है, जिसके फलस्वरूप फसल के गिरने से बचाने में रक्षा होती है। जिन फसलों को पोटाश की पूरी मात्रा मिलती है उन्हें वांछित उपज देने के लिये अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होती है इस प्रकार पोटाश के प्रयोग से फसल की जल उपयोग क्षमता बेहतर होती है। पोटाश फसलों की गुणवत्ता बढ़ाने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पोषक तत्व है। पोटाश के अलावा अन्य पोषक तत्वों की मात्रा निम्न अनुसार हैं, नत्रजन 80–100, फॉस्फोरस 40–50, पोटाश 20–40, गंधक 20–40, बोरोन 10–12, जिंक 22–25 मात्रा किग्रा. / हैक्टेयर प्रयोग में लेवें।

पोटाश की उपलब्धता :–

तिलहनी फसलों में अधिक उपज देने वाली किस्में और कृषि की नई और उन्नत तकनीक अपनाने से भूमि में पोटाश की कमी हो रही है। यदि पोटाश की पूर्ति इस अनुपात में नहीं हो पाई जिस अनुपात में अधिक उत्पादन तथा पोटाश का निष्कासन हुआ है। इसलिये पोटाश का प्रयोग नाइट्रोजन और फॉस्फोरस धारी उर्वरकों के साथ किया जाना चाहिए। पोटाश पौधों के पोषण में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस के प्रभाव को बढ़ा देता है। इस प्रकार पोटाश के प्रयोग से अधिकतम पैदावार, उच्चतम उत्पाद गुणवत्ता और अधिकतम मुनाफा मिलता है। आमतौर पर पोटाशक्लोराइड़ के रूप में मिलता है। इसे खदानों से निकालकर साफ किया जाता है और परिशुद्ध लवण उर्वरक के रूप में म्यूरेट ऑफ पोटाश के नाम से बाजार में मिलता है। इसके अलावा पौटेशियम सल्फेट ओर सल्पोमैग से भी पोटाश की पूर्ति होती है। आमतौर पर पोटाश खाद का प्रयोग बुआई या रोपाई के समय करना चाहिए परन्तु हल्की अर्थात बलुई मिट्टी में पोटाश का विभाजित प्रयोग किया जा सकता है।

पोटाश के कार्य :–

यह पौधों की अनेकों उपचायी प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पोटाश जड़ों की वृद्धि करता है। पोटाश भोज्य पदार्थ के संग्रहण व स्थानान्तरण को बढ़ाता है। पोटाश प्रकाश संश्लेक्षण के लिए अति आवश्यक है। पोटाश 60 से अधिक एन्जाइम्स को क्रियान्वित करता है। पोटाश पौधों में उच्च उर्जा स्थिति को बनाये रखता है। अधिक जल उपयोग क्षमता के लिए पोटाश तक जल अनुपात को नियन्त्रित करता है, जिससे पौधों की शीत कठोरता व पाले से लड़ने की क्षमता

बढ़ती है। पोटाश पौधों की रोग व कीट रोधी क्षमता को बढ़ाता है। पोटाश पौधों से नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता को बढ़ाता है। पोटाश एक ऐसा पोषक तत्व है जो फसलों की गुणवत्ता को बढ़ाता है इसलिए इसे गुणवत्ता तत्व कहा जाता है। पोटाश दाने में प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाता है फसलों में माण्ड, वसा व विटामिन–सी की मात्रा में वृद्धि करता है। फलों व कन्दों के आकार को बढ़ाता है। फलों के रंग व सुगन्ध को बढ़ाता है। कृषि उत्पादों के भण्डारण व ढुलाई की क्षमता को बढ़ाता है। कृषि उत्पादों के जीवन (Shelf Life) को बढ़ाता है। यह एमिनों एसिड एवं प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक है। क्लोरोफिल बनाने में मदद करता है। सरसों एवं प्याज के पौधों में तथा सोयाबीन एवं मूंगफली में तेल की मात्रा को बढ़ाता हैं। धान्य फसलों, विशेषकर धान और गेहूँ में यह मजबूत और कड़े तने तैयार करने में सहायता करता है, जिसके कारण पौधे गिरते नहीं है। बीज और फल को चमकीला और मजबूत बनाता है। पौधों में रोग निरोधी शक्ति को बढ़ाता है। कोशिकाओं में स्थित जल की मात्रा को नियंत्रित करके पोटाश पाले एवं सूखे से होने वाली हानि को कम करता है एवं पौधों की रक्षा करता है। यह पौधों के विभिन्न भागों में कार्बोहाइड्रेट के स्थानांतरण में मदद करता है।

पोटाश की कमी के लक्षण :–

यदि फसल में एक बार पोटाश तत्व विशेष के अभाव के लक्षण दिखाई दे जाये तो आप समझ लीजिए कि फसल की क्षति हो चुकी है जिसका पूरी तरह उपचार सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में पोटाश के प्रयोग से पूरा लाभ नहीं मिलेगा। पौधों में पोटाश की छिपी हुई कमी की दशा में हम देखते हैं कि पोटाश के प्रयोग से स्वस्थ पौधे अपेक्षाकृत बहुत अधिक उपज देते हैं। इसलिये यदि फसल में पोटाश की कमी के लक्षण प्रकट होने तक प्रतीक्षा करेंगे तब तक काफी विलम्ब हो चुका होगा और फसल की रक्षा आप नहीं कर सकेंगे। पत्तियों के किनारे कटे–फटे और उनका आगे का शिरा भूरा हो जाता है। पत्तियाँ आकार में छोटी हो जाती है और उनकी वृद्धि रुक जाती है। सरसों के पौधों की वृद्वि एवं विकास में कमी, पत्तियों का रंग गहरा हो जाना, पुरानी पत्तियों के कोनों या किनारे से पीला पड़ना, बाद में ऊतकों का मरना और पत्तियों का सूखना एवं कार्बोहाइड्रेट उपापचयी क्रियाओं में पोटाश की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पुरानी पत्तियाँ पहले प्रभावित होती है जिन पर सफेद, पीले, संतरी रंग के धब्बे दिखाई देते है जो कि पत्ती की नोक से शुरू होते है। पत्तियों का रंग हरे से भूरा हो जाता है और पत्तियाँ सिकुड़ जाती है। इसके बाद, पोटाश की कमी के लक्षण नयी पत्तियों में भी दिखाई देने लग जाते हैं जो कि छोटी व हरी नीली हो जाती है। डण्ठल पतला व भंगुर हो जाता है व परिणामस्वरूप नीचे गिर जाता है। अतः पौधौं की जड़ कम विकसित होती है और प्रायः सड़ने लगती है। रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। फलों का आकार छोटा रह जाता है व रंग भी फीका पड़ जाता है। भूमि पर अधिक उपज वाली एक फसल के बाद दूसरी फसल लेने से मृदा में पोटाश की मात्रा कम हो रही है। इस दशा में यदि पोटाश उर्वरकों का प्रयोग नहीं किया गया तो पोटाश की मृदा में अधिक कमी हो जायेगी। अक्सर पौधे पोटाश की कमी होते हुए भी कमी के लक्षण नहीं दिखाते ऐसी स्थिति को छिपी हुई भूख (Hidden Hunger) कहते है जिसमें कमी के लक्षण भी नहीं दिखाई देते परन्तु उपज घट जाती है इसलिए किसान को पोटाश कमी के लक्षण को इन्तजार नहीं करना चाहिए।

पोटाश के उपचार :–

पौधा अपना भोजन पोषक तत्व के रूप में ग्रहण करते हैं, इसलिये खाद व उर्वरक का उपयोग इस प्रकार से सन्तुलित होना चाहिए ताकि फसल को पर्याप्त मात्रा में सभी आवश्यक पोषक तत्व मिल सकें। इस प्रकार का सुनियोजित उर्वरक प्रयोग, सन्तुलित उर्वरक प्रयोग कहलाता है। पोटाश की कमी को बुआई से पहले मिट्टी की जाँच से प्राप्त प्रतिवेदन के आधार पर पोटाश उर्वरक की अनुशंसा वाली मात्रा डालकर अथवा खड़ी फसल में पोटाशियम सल्फेट का 2–4 प्रतिशत घोल का छिड़काव कर उपचार किया जा सकता है।

फसल चक्र :–

जिन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन है, उन क्षेत्रों में सरसों की बुवाई के पूर्व खरीफ में खेत खाली नही छोड़ना चाहिए। सस्य सघनता बढ़ाने हेतु अन्य फसलों के क्रम में इसे सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। इसकी खेती से भूमि एवं आने वाली फसल के उत्पादन पर किसी भी प्रकार का विपरीत प्रभाव नही पड़ता। सरसों पर आधारित उपयुक्त फसल चक्र निम्नानुसार लिए जा सकते है।

सिंचित क्षेत्रों के लिए	असिंचित क्षेत्रों के लिए
सरसों / तोरिया–ग्रीष्मकालीन सब्जियाँ	लोबिया (सब्जी वाली)–सरसों
सरसों+बरसीम	लोबिया (चारा)–सरसों
मूँग / उड़द / बाजरा / तिल–सरसों–मूँग	ढ़ैंचा / मूँग / उर्द / सनई (हरी खाद)–सरसों

सारांश :–

तिलहनी फसलों में पोटाश उर्वरक का भी अन्य उर्वरकों की तुलना में बराबर योगदान रहता है। सरसों की फसल में पोटाश का समुचित प्रयोग में लेने से पौधों की बढ़वार, तना मजबूती एवं बीज की गुणवत्ता में महत्वपूर्ण भूमिका होती है अतः पोटाश युक्त उर्वरकों को प्रयोग में लेकर उचित उत्पादन ले सकते है।

❑❑❑

जैविक खेती में सुक्ष्मजीवों का महत्व

मोहन लाल दौतानियॉ, मुरलीधर मीणा, मुकेश कुमार मीणा

भा.कृ.अनुप. – सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

भारत देश जिसकी आबादी विश्व में नंबर दो पर तथा क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत हिस्से से बढ़ती हुई जनसंख्या को लंबे समय तक खाद्य सामग्री पूर्ति करना अपने आप में एक चुनौती है। इस ओर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली की देखरेख में कृषि के विभिन्न आयामों जैसे उन्नत किस्मों का विकास, आधुनिक फसल प्रणाली, उर्वरकों का संतुलित प्रयोग तथा सब्जियों व फलों का परिरक्षण, मीट, अण्ड़ा, मछली की उपलब्धता में बढ़ोत्तरी तथा प्रसार शिक्षा के द्वारा किसानों को नई तकनीकों के बारे में अवगत करवाना तथा किसानों के बीच तकनीकों का प्रदर्शन मील का पत्थर साबित हो रहा है जिसका परिणाम है कि भारत जैसा विशाल जनसंख्या वाले देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है तथा विश्व आर्थिक पटल पर मुख्य देशों की गणना में शामिल है।

देश में खाद्यानों की उत्पादकता को तथा बढ़ते हुए रासायनिकों के प्रयोग के कारण फसल उत्पाद की गुणवत्ता में कमी पाई गई है तथा साथ ही रासायनिकों की सुक्ष्म मात्रा खाद्य श्रृंखला द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके विभिन्न प्रकार के रोगों को जन्म देती है। दूसरी ओर बढ़ते हुए औद्योगिकरण से निकला हुआ गंदा पानी का सही प्रकार से प्रबंध नहीं करने के कारण स्वस्थ भूमि व जलाशयों को प्रदूषित होने की दर से कई गुना वृद्धि हुई है जिससे थलचर एवं जलीय जीवो की संख्या व विभिन्नता में कमी देखी गई है। इन सब कारणों के बीच हम फसल गुणवत्ता की बात हास्यास्पद लगती हैं लेकिन हमें मृदा व मनुष्य के स्वास्थ्य को बचाना है तो हमें जैविक खेती या प्राकृतिक खेती का तरफ बढ़ना होगा। किसान की भाषा में "फसल उत्पादन के दौरान किसी भी प्रकार के रसायनों का प्रयोग प्रतिबंधित" है। फसल उत्पादन के दौरान गोबर की खाद, हरी खाद, वर्मी कंपोस्ट, जीवामृत इत्यादि का प्रयोग भूमि में पोषक तत्वों की सान्द्रता बढ़ाने के लिए तथा नीम का अर्क, धतूरा, आंक आदि के समिश्रणों से कीट व बीमारियों से रक्षा के लिए दवाइयां बनाई जाती है। इस प्रक्रिया द्वारा फसल उत्पादन में लागत भी कम आती है तथा मृदा स्वास्थ्य व फसल गुणवत्ता में बढ़ोतरी भी पाई गई है। स्वास्थ्य में पोषक तत्वों की सान्द्रता तथा गोबर की डाली गई खाद को मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों द्वारा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जाता है जिससे पोषक तत्वों की उपलब्धता निर्धारित होती है तथा फसल को वृद्धि के दौरान उपयोगी होती है। जैविक खेती में निम्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों की महत्त्वता अधिक है इस प्रकार से है।

मृदा में उपस्थिति के आधार पर सूक्ष्मजीवों को दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं (1) मृदा पादप–इसके तहत् पादप वर्ग के अंतर्गत तथा (2) मृदा जीव। इन सब को आकार के आधार पर दो भागों में विभक्त कर सकते हैं (1) वृहद् जीव : इनको आंखों से देख सकते हैं (2) सूक्ष्म जीव : इनको देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग करना पड़ता है।

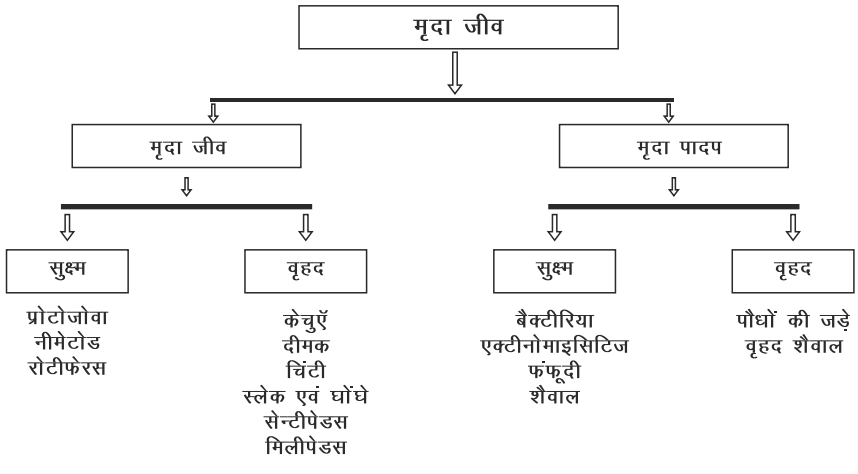

चित्र : मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीव

वृहद् मृदा जीव :

इस वर्ग के जीव मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों को छोटे–छोटे भागों में विभक्त करते हैं साथ ही इनकी आतों में उपस्थित विशेष प्रकार का चिपचिपा पदार्थ, अपशिष्ट पदार्थ के साथ बाहर निकल जाता है जिसमें विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा पाई जाती है ये जीव मृदा में सुरंग बनाकर मृदा में वायु के आदान–प्रदान की दर को बढ़ाते हैं।

(क) केंचुआ : विश्व में केंचुए की 1800 से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं तथा कई प्रजातियां मृदा की गहराईयों (10–25 सेंटीमीटर) में पाई जाती हैं। घास ऑछादित भूमि में केंचुआ की संख्या अधिक पाई जाती है। अगर हम प्रति हैक्टेयर से देखें तो 110–1100 किलोग्राम/हैं केचुएं का बायोमास पाया जाता है। केचुएं की संख्या मृदा में अधिज जुताई करने, कीटनाशकों का अधिक प्रयोग करने तथा कार्बन की कम मात्रा आदि से कम हो जाती है। केचुएं को किसान मित्र कहा जाता है। केचुएं अपने शरीर के भार की तुलना में 5–36 गुना अधिक कार्बनिक प्रदार्थों का पाचन करता है इसके अपशिष्ट को कास्ट कहते है। यह नत्रजन, फास्फोरस एवं कैल्शियम से संपन्न होती है। केचुएं का उपयोग करके गोबर, फार्म का कार्बनिक अपशिष्ट को कम्पोस्ट में परिवर्तित कर सकते है तथा जो उत्पाद बनता है उसे वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं तथा जिस जगह वर्मी कंपोस्ट बनाते हैं उसे वर्मीरी कहते हैं। भारतवर्ष में *इसिनीया फाइटिडिया, इयूड्रिस इनिजिनाइव पेरीओ नाइक्स एक्सकेवेटस्* पाया जाता है।

(ख) दीमक : मृदा में उपस्थित विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों के डंठल को खाकर उनमें उपस्थित लिग्निन की जटिल संरचना को सरल संरचना में विभाजित करती है। अधिक क्षारीय गुणों वाली मृदाओं में दीमक लगने की संभावना अधिक होती है इनमें सैल्यूलोज को पचाने की क्षमता पाई जाती है दीमक की संख्या सबसे अधिक जंगली मिट्टियों में पाई जाती तथा इसके अपशिष्ट में कार्बन की मात्रा केंचुए से कम पाई जाती है।

(ग) पादप जडें : पादप जड़ो का स्मरण होते ही ऐसा लगता है ये तो जीवों श्रेणी में नहीं आते हैं लेकिन बारीक पादप जड़ों को जीवों की श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। यह मृदा में प्राथमिक स्रोत के रूप में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाने के लिए पादप जड़े विभिन्न प्रकार के अम्लीय रसायनों को स्रावित करती हैं जो मृदा में उपस्थित अविलय पादप पोषक तत्व को घुलनशील रूप में परिवर्तित करते हैं जिससे पौधों द्वारा ग्रहण करने में मदद मिलती है तथा पादप स्रावितों के कारण विभिन्न प्रकार के सुक्ष्म जीवों की संख्या व रूपता अत्यधिक पाई जाती है।

मृदा सूक्ष्मजीव :–

मृदा में सूक्ष्म जीवों की संख्या अधिक पाई जाती है तथा पौधों को पोशक उपलब्ध कराने में इनकी अहम् भूमिका है। जैविक खेती में विभिन्न सुक्ष्मजीवों को खाद के रूप में उपयोग करने की सलाह देते हैं तथा देखा गया है कि इनके उपयोग से फसल की पैदावार में वृद्धि पाई गई है मृदा में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव इस प्रकार हैं।

(1) जीवाणु (बैक्टीरिया) : जीवाणु मृदा में सबसे सुक्ष्म एवं सबसे अधिक संख्या में पाये जाते हैं। ये एक कोशकीय होते है तथा इसका व्यास एक माइक्रान से 10 माइक्रोन तक होता है। इतना छोटा होने के बावजूद भी इनका बायोमास 3500 किलो/है के लगभग पाया जाता है। इनका आकार विभिन्न प्रकार का होता है जैसे दीर्घ वृत्ताकार (बैसीलस), स्पाइरल (स्पाइरीला)। ये विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे *स्यूडोमोनास, क्लास्ट्रीडियम, बैसीलस, एग्रोबैक्ट्रीरियम, माइकोकोकस* इत्यादि। *राइजोबियम बैक्टीरिया* वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करके पौधों की जड़ों में पाई जाने वाली गाठों में संचय करते हैं। फसल उत्पादन के दौरान कई प्रकार के जैविक खाद जैसे फॉस्फोरस घुलनशील बैक्टीरिया (पी एस बी), *राइजोबियम* एवं *एजोक्टोबेक्टर* कल्चर का प्रयोग करते है। इन सूक्ष्म जीवों केकल्चर को कंपोस्ट में मिलाकर इनकी संख्या में को बढ़ा सकते हैं लेकिन ध्यान रहे इनका उपयोग वैज्ञानिकों द्वारा बताए गए निर्देशानुसार ही करना चाहिए।

(2) एक्टीनोमायसिटिज : यह एक प्रकार का बैक्टीरिया होता है जिसमें फफूंदी की तरह वायुवीय हाइफी होती है। इसमें बैक्टीरिया के गुण जैसे कोशिका आकार, संरचना, जनन तथा फफूंद के गुण शाखाओं में विभक्त होना पाया जाता है। इनकी संख्या बैक्टीरिया से कम होती है लेकिन अन्य सूक्ष्मजीवों से अधिक होती है। कम नमी व जंगली मृदाओं में इनकी संख्या अधिक होती है तथा मृदा उदासीन पी.एच. मान (7–7.5) पर अधिकतम संख्या मिलती है तथा ये हवा में जीवित रहने वाला सुक्ष्मजीव है। इनका कार्य मृदा में कार्बनिक पदार्थों का विघटन करना है तथा विभिन्न प्रकार की एन्टीबायोटिक स्रावित करना है जिससे मृदा में उपस्थित हानिकारक जीवाणुओं की संख्या कम रहती है। मृदा में ह्यूमस बनाना तथा विभिन्न रंगों के रूप में मृदा में पहचान देना भी है। कम्पोस्ट के गड्ढे में अधिक तापमान का होना भी एक्टीनोमायसिटिज के कारण ही होता हैं। इसक कुछ वर्ग इस प्रकार हैं *एक्टीनोमाइसिटिल मोनोस्पोरी, नोकारडिया, थर्मो–एकट्रिनामाइसिटिन* इत्यादि।

(3) फफूँदी : हम किसान भाई फफूंद को भली–भांति जानते हैं क्योंकि ये फसल में बीमारियाँ उत्पन्न करने में कार्य करती हैं। इसकी जालीनुमा संरचना होती है जिसे माइसिलियम कहते हैं तथा एक धागेनुमा संरचना कई भागों में विभक्त होती है। इनकी संख्या तो बैक्टीरिया से कम होती है लेकिन बायोमास मृदा में अधिक होता है। फफूँद मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों को सरल संरचना में विभक्त करते हैं तथा पादप पोषक तत्वों के अवशोषण में पौधों की मदद करते हैं जैसे ये पौधों की फॉस्फोरस पोषक तत्व के उपयोग के बढ़ाते है। यह फफूंदी विभिन्न संरचना द्वारा फॉस्फोरस का अवशोषण करके पौधों की जड़ों तक पहुँचाती है जैसे *बोलेट्स, अमेनिटा, ग्लोम्स* इत्यादि।

(4) शैवाल : मृदा में पूर्णहरित सुक्ष्मजीव पाया जाता है। यह अपना भोजन स्वयं बनाते हैं यह भी एक कोशिकीय तथा विभिन्न रंगों में पाए जाते हैं जैसे नीली–हरी शैवाल (सायनोबैक्टीरिया), हरी शैवाल, पीली शैवाल। नीली–हरी शैवाल वायुमंडलीय नत्रजन का स्थायीकरण करती है तथा प्रतिवर्ष लगभग 20 किलो/हेक्टेयर नत्रजन मृदा को प्रदान करती है। सर्वप्रथम 1950 के दशक में डॉक्टर आर. एन. सिंह जो ने शैवाल का कृषि क्षैत्र में उपयोगिता पर शोध आज जैविक खेती में पोषक तत्व प्रदान करने का एक मुख्य घटक के रूप में जाना जाता है। इसको चावल के खेत में डालते हैं जिससे फसल को नत्रजन की कम मात्रा की जरूरत पड़ती है साथ ही किसान भाई इसका उपयोग दुधारू पशुओं को प्रोटीनयुक्त हरा चारा खिलाने के रूप में भी करते हैं।

(5) प्रोटोजोआ : यह भी एक कोशिकीय जीव होता है तथा इसके जीवन चक्र में सक्रिय और निष्क्रिय क्रियाएं होती है। इसकी लंबी पूंछ जैसी संरचना होती है जिस पर बारीक बालनुमा धागे होते हैं जिसे सिलीया कहते हैं तथा आभासी पैर होते हैं जो स्यूडोपोडिया होते हैं। इसलिए इसे पशु वर्ग में वर्गीकृत करते हैं। उपजाऊ भूमि में प्रोटोजोआ की मात्रा एक मिलियन प्रति ग्राम पाई जाती है। अधिकतर प्रोटोजोआ परजीवी होते हैं तथा मृदा कार्बनिक पदार्थों पर भोजन के लिए आश्रित होते हैं। इनकी बैक्टीरिया के साथ परस्पर प्रतियोगिता चलती रहती है। अगर मृदा में प्रोटाजोआ की संख्या बढ़ जाती है तो वह उपयोगी बैक्टीरिया की संख्या को कम कर देते हैं जिससे मृदा उपजाऊपन पर फर्क पड़ता हैं।

(6) सूत्रकमि (निमोटोड) : सुक्ष्म पौधा वर्ग में प्रोटोजोआ के बाद इनकी संख्या अधिक होती है। इनकी संरचना धागे के समान होती है इसलिए इन्हें थ्रैड वर्ग भी कहते हैं। यह भी मृदा कार्बन पर निर्भर होते हैं तथा इनके फसल उपयोगी कार्य से अधिक फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। इनको फ्यूमीगेसन, करंज और नीम की खल के उपयोग से कम कर सकते हैं।

(7) विषाणु (वाइरस) : यह बहुत ही छोटे जीव होते हैं जिनको हम सुक्ष्मदर्शी द्वारा ही देख सकते हैं। ये मृदा पोषक तत्वो के अपघटन में सहायक नहीं है। इनकी संख्या अधिक होने पर यह विभिन्न प्रकार की मनुष्य, फसल, व जन्तुओं सम्बन्धित बीमारियां फैलाते हैं।

मिट्टी में पाए जाने वाले विभिन्न सूक्ष्मजीव मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों का अपघटन करके उन्हें सरल रूप में विभिक्त करते हैं जिससे कि पौधा अपनी जड़ों द्वारा आसानी से अवशोषण कर लेता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार की जैविक खादों द्वारा मृदा में स्थिरीकरण के कारण फसल में नत्रजन की मात्रा की कम जरूरत पड़ती है तथा मृदा की उपजाऊ शक्ति भी बढ़ती है। कुछ सूक्ष्मजीव जैसे एक्टीनोमाइसिटिज मृदा में एंटीबायोटिक का स्रावित करते हैं जिससे मृदा में उपस्थित रोगजनक सूक्ष्मजीवों पर नियंत्रित रखता है। आजकल बाजार में विभिन्न प्रकार के जीवाणु खाद मिलते हैं जिनका उपयोग बीज उपचार तथा मृदा प्रयोग द्वारा करके मृदा स्वास्थ्य व फसल उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। सूक्ष्मजीव जैविक खेती में बहुत उपयोगी है तथा महत्वपूर्ण घटक के रूप में कार्य करते हैं।

❑❑❑

मृदा स्वास्थ्य एवं टिकाऊ खेती हेतु एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

पार्वती दीवान[1], राजहंस वर्मा[2], राजेश कुमार दौतानियाँ[2]

[1]कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र, गोनेडा–कोटपुतली, जयपुर

[2]श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर

पौध उर्वरक के एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन की मूल अवधारणा का अर्थ है कि मृदा उत्पादकता तथा पौधों की उर्वरक आपूर्ति के बीच एक ऐसा समन्वय बनाए रखा जाये ताकि पौधों के पोषक तत्वों के सभी स्रोत्रों के लाभ को समेकित ढंग से प्रयोग द्वारा फसलों की अधिक उत्पादकता प्राप्त की जा सके। रासायनिक उर्वरक, कार्बनिक खाद, कृषि अपशिष्ट और नाइट्रोजन बनाने वाली फसलों के कम्पोस्ट का भूमि में प्रयोग करने की पद्धति पर्यावरणीय, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। सरकार द्वारा रासायनिक उर्वरकों पर सब्सिडी घटाते जाना उर्वरक उत्पादकों तथा किसानों के लिए चिन्ता का विषय है। उर्वरकों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए इसके आयात से देश की विदेशी मुद्रा पर भारी बोझ पड़ता है। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक समझा गया कि फसलों के लिए पोषक तत्वों की आपूर्ति हेतु टिकाऊ स्रोत्र खोजे जाएं।

आज इस बात से सभी सहमत हैं कि देश को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने में आधुनिक कृषि तकनीकों जैसे उन्नतशील प्रजातियों, जल प्रबन्धन, रासायनिक उर्वरक एवं अन्य कृषि रासायनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उर्वरकों के उपयोग का कृषि उत्पादन बढ़ाने में लगभग 50 प्रतिशत का योगदान है। अतः भारत जैसे विकासशील देश में उर्वरकों का बहुत महत्व है। परन्तु विगत कुछ वर्षों मे उत्पादकता मे एक ठहराव सा आ गया है। इसका मुख्य कारण भूमि की निरंतर घटती हुई उर्वरा शक्ति तथा मृदा रसायनिक एवं भौतिक गुणों मे कमी आना है। आज हमारे देश में उर्वरकों के द्वारा लगभग 18 मिलियन टन पोषक तत्व प्रति वर्ष भूमि में डाले जा रहे हैं। जबकि विभिन्न फसलों द्वारा लगभग 28 मिलियन टन पोषक तत्व प्रति वर्ष भूमि से निकाले जा रहे हैं। यह स्थिति भूमि की उर्वरता एवं उत्पादकता की दृष्टि से बहुत ही भयावह होगी।

सभी जानते हैं कि पौधों की वृद्धि हेतु 17 विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। परन्तु उर्वरकों के रूप मे मुख्यतः तीन पोषक तत्वों नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश का ही प्रयोग किया जाता है। इसलिये भूमि में कुछ आवश्यक पोषक तत्वों, जैस–जस्ता, गंधक, लोहा, बोरान, मोलिब्डेनम आदि की कमी लगातार बढ़ती जा रही है। पहले खेती मे कार्बनिक खादों जैसे गोबर खाद, कम्पोस्ट खाद, हरी खाद इत्यादि का प्रयोग अधिक किया जाता था। जो मुख्य पोषक तत्वों के स्रोत्र के साथ उच्च मृदा गुणों को बनाये रखने मे सहायक थे। परन्तु सघन खेती अपनाये जाने के फलस्वरूप कार्बनिक खादों के प्रयोग में भारी कमी आयी है। इससे भूमि के स्वास्थ पर बहुत ही विपरीत प्रभाव पड़ा है और भूमि में पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ा जो कि उत्पादन में ठहराव, भूमि की गिरती उर्वरता एवं भौतिक गुणों में कमी के लिये मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

आज यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि न अकेले रासायनिक उर्वरकों तथा न सिर्फ जैविक खादों के एकल प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इसलिये कृषि उत्पादन में निरन्तर बढ़ोत्तरी एवं भूमि के स्वास्थ को बनाये रखने के लिये एकीकृत पादप पोषण प्रणाली, जिसके अन्तर्गत समुचित मात्रा मे रासायनिक उर्वरकों का संतुलित एवं सक्षम उपयोग के साथ ही जैविक एवं जीवाणु खादों का समुचित समावेश हो, अपनाने की सिफारिश की जाती है। एकीकृत पादप पोषक तत्व प्रबन्धन इस प्रकार की व्यवस्था है जिसमें पोषक तत्वों के लिये रासायनिक उर्वरकों कार्बनिक खादों जैव उर्वरकों फसल अवशेष इत्यादि द्वारा एक साथ पोषक तत्व दिये जाये जिससे उच्च गुणवत्ता का भरपूर टिकाऊ उत्पादन प्राप्त हो तथा मृदा एवं वातावरण पर बुरा असर न पड़ें बल्कि इनमें सुधार हो। किसी क्षेत्र विशेष के लिये एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु उस क्षेत्र की मृदा उर्वरकता, वहाँ पर उपलब्ध कार्बनिक स्रोत्रों, उगाये जाने वाली फसलों एवं किसानो की आर्थिक स्थिति का आंकलन जरूरी है।

एकीकृत पादप पोषक तत्व प्रबन्ध के लाभ :–

- रासायनिक उर्वरक मुख्य रूप से एक, दो या तीन पोषक तत्व के ही स्रोत्र होते है।
- कार्बनिक खादों मे पौधों के लिये आवश्यक सभी पोषक तत्व विद्यमान रहते है।
- रासायनिक उर्वरकों के द्वारा पोषक तत्वों की सम्पूर्ण आवश्यकता को पूरा किया जाना सम्भव नहीं है।
- कार्बनिक खादों के प्रयोग से भूमि के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है।
- जैविक खाद भूमि में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं सक्रियता में सुधार लाती है।
- कार्बनिक खादों के प्रयोग से भूमि से सूक्ष्म एवं अन्य पोषक तत्वों की सुलभता में सुधार होता है।
- एकीकृत पादप पोषण प्रबन्धन से न केवल भूमि की संरक्षण क्षमता बढ़ती है बल्कि मृदा जीवांश की मात्रा मे भी वृद्धि होती है। साथ ही भूमि की उर्वरक उपयोग क्षमता में भी सुधार होता है।
- एकीकृत पादप पोषण प्रबन्धन आर्थिक दृष्टि से लाभकारी एवं वातावरण सुधारक है।

एकीकृत पादप पोषण प्रबन्धन के घटक :–

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के अन्तर्गत मुख्यतः जैविक खादें, हरी खादें, जैविक उर्वरक, फसल अवशेषों इत्यादि को कम्पोस्ट मे परिवर्तित कर पोषक तत्वों की पूर्ति की जा सकती है। पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने हेतु बड़ी मात्रा में कार्बनिक खादों की उपलब्धता एक सबसे बड़ी चुनौती हैं। पशुओं से मिलने वाली गोबर खाद द्वारा इनकी आपूर्ति असंभव है। इसलिए हमें खेती पर एवं खेतों के बाहर उपलब्ध विभिन्न नैसर्गिक संसाधनों का प्रभावी तरीके से प्रयोग करने की जरूरत है। पोषक तत्व प्रबंधन हेतु निम्न विधाओं का उल्लेख दिया गया है।

1) जैविक खाद :–

जैविक या कार्बनिक खाद भूमि में जीवांश एवं पोषक तत्वों के स्रोत्र है। इनमें पोषक तत्वों की मात्रा रासायनिक उर्वरकों की अपेक्षा काफी कम होती हैं। परन्तु ये भूमि के भौतिक एवं जैविक गुणों में सुधार कर उर्वरक उपयोग एवं जल संरक्षण क्षमता में बढ़ोत्तरी करते हैं। जैविक खाद के लिये गोबर खाद, कम्पोस्ट खाद आदि का प्रयोग किया जा सकता है। इनका प्रयोग बुवाई से पहले किया जाना चाहिये। गोबर की कम उपलब्धता की दशा में किसान नाडेप कम्पोस्ट अथवा वर्मी कम्पोस्ट तैयार कर इनका उपयोग भी कर सकते हैं।

2) हरी खाद :–

खड़ी हरी फसलों, विशेषकर दलहनी फसलों को निश्चित अवधि तक उगाकर (फूल आने तक) छोटे–छोटें टुकड़ें कर भूमि में पोषक तत्वों की प्राप्ति के लिये मिलानें की विधि हरी खाद कही जाती है। हरी खाद के लिए प्रयोग की जाने वाली फसलों को दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है।

क) फलीदार या दलहनी फसलें :–

फलीदार फसलों की जड़ों में ग्रन्थियाँ पायी जाती है जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार की फसलें भूमि की भौतिक दशा सुधारने के साथ फसलों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराती है। सनई, ढैंचा, उड़द मूंग, ग्वार, लोबिया, कुल्थी, बरसीम, मटर, मसूर, मेंथी आदि दलहनी फसलों को मुख्यतः हरी खाद के रूप में प्रयोग करते हैं।

ख) बिना फलीदार या अदलहनी फसलें :–

अदलहनी फसलों को हरी खाद के रूप में प्रायः उस भूमि में प्रयोग करते हैं जिनमे केवल जीवांश की वृद्धि करनी होती है। अतः इन फसलों का प्रयोग नाइट्रोजन की बाहुल्यता वाली भूमि में किया जाता है। अदलहनी फसलों में ज्वार, मक्का, सूरजमुखी, भांग, अमलतास, जौ इत्यादि आते है।

हरी खाद के लिये प्रायः ढेंचा या सनई की 45 दिन की फसल को धान की रोपाई से पहले खेतों में हैरो द्वारा जुताई कर प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग से धान की फसल में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर तक की बचत की जा सकती है। गेंहूँ की कटाई के बाद मूँग की फसल लेकर, फलियों को दानें के लिये तोड़कर इसके भूसे को भी मिट्टी में मिलाकर हरी खाद के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। एज़ौला नामक फर्न का 10 टन/हैक्टर की दर से हरी खाद के रूप में प्रयोग करने पर धान में 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर तक आपूर्ति की जा सकती है।

3) जैव उर्वरक :–

कृषि उत्पादन को जीवित रखने के लिए जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण ही एक मात्र उपाय है। खेतों में जैविक उर्वरकों का प्रयोग ही एक उचित विकल्प है। जैव उर्वरक एक जीवित

उर्वरक है जो कि जैविक निवेषण या सूक्ष्म जीवाणुओं के समूह से बना है जो कि वायुमण्डल का नाइट्रोजन स्थिर कारक कहा जाता है। उनको निम्न समूहा मे बाँटा गया है। स्वतत्र रूप सें जीवित रहने वाले सूक्ष्म जीवाणु जैसे *ऐजोटोबेक्टर* और *ऐजोस्पाईरिलम,* नील हरित शैवाल और सहजीवी जैसे *राइजोबियम फ्रैंकिया* और एजोला। नाइट्रोजन तत्व की पूर्ति हेतु दलहनी फसलों के लिये *राइजोबियम* जैव उर्वरक तथा धान्य एवं सब्जियों के लिये *एजोटोबेक्टर* एवं *ऐजोस्पाईरिलम* जैव उर्वरक प्रचलन में है। फास्फोरस तत्व के लिये फास्फेट घोलक जैव उर्वरक (पी.एस.बी.) उपलब्ध है। *राइजोबियम* जैव उर्वरक जहॉ दलहनों की 80 सें 90 प्रतिशत तक नाइट्रोजन की पूर्ति करने में सक्षम हैं वहीं *एजोटोबेक्टर* एवं *एजोस्पिरलिम* के प्रयोग से लगभग 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर तक की बचत की जा सकती है। जैव उर्वरकों के प्रयोग का भूमि एवं वातावरण पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं होता है। ये भूमि के लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि कर भूमि की प्राकृतिक उर्वरा शक्ति बढ़ाते है।

4) खलियाँ (ऑयल केक्स) :–

तिलहनों से तेल निकालने के बाद जो तेल रहित बीजों का हिस्सा/अवशेष बच जाता है उसे खली कहते है। खलियों में उपलब्ध नत्रजन पौधों तथा फसलों को कम समय में प्राप्त होता हैं। नत्रजन के साथ–साथ इसमें कुछ मात्रा में फॉस्फोरस एवं पोटाश भी होता है। खलियॉ मुख्यतः दो प्रकार की होती है। पशुओं के खाने योग्य एवं पशुओं के खानें अयोग्य। पशुओं के खानें योग्य खलियाँ जैसें–मूंगफली की खली, सरसों की खली, तिल की खली इत्यादि पशुओं को खिलाने के काम आती है तथा पशुओं के खाने अयोग्य खलियों (नीम की खली, महुआ की खली, करेंज की खली इत्यादि) का प्रयोग खाद के रूप में करते हैं। खलियों का प्रयोग फसल बोने से 15–20 दिन पहले खेतों मे जुताई कर मिट्टी में मिला दिया जाता है। खलियों के विच्छेदन हेतु मिट्टी में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। साधारणतः फसलों के अनुरूप 10–30 कुन्टल खली प्रति हैक्टर के दर से प्रयोग करते हैं।

5) तरल खाद :–

तरल खादों में वर्मीवाश तथा पशुओं का मूत्र पौधों तथा फसलों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने की क्षमता रखते है। पशुओं के मूत्र को सीमेन्ट से बनी हुई टंकी में 21–30 दिनों के लिए रखा जाता है। इसमें लगभग 50 कि.ग्रा. गाय का ताजा गोबर मिश्रित किया जाता है। इस तरह से बनी हुई खाद जैविक खेती मे नत्रजन का एक अच्छा स्रोत्र है। एक महीने के उपरान्त इस खाद को खेतों में डालने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इस खाद का पौधों में रोग एवं कीटाणुओं की रोकथाम हेतु जैव नियंत्रक के रूप में प्रयोग किया जाता है। रोग/कीट नियंत्रण के लिए इस खाद को पतला बनाकर छिड़काव किया जाता है या सिंचाई के पानी में मिला दिया जाता है।

6) फसल अवशेष :–

फसलों के भूंसे मे पौधे के लिये आवश्यक लगभग सभी पोषक तत्व विद्यमान होते हैं। अतः कटाई उपरान्त फसलों के भूंसे को जहॉ तक सम्भव हो मिट्टी में मिलाकर पोषक तत्वों एवं जीवांश के स्रोत्र के लिये प्रयोग करना चाहिये। साधारणतः फसल अवशेषों को कम्पोस्ट खाद बनाकर प्रयोग किया जाता है। फसलों के अवशेषों को सीधे भी खेत मे डाला जा सकता है परन्तु इसके लिये भूमि में इनके सड़ने के लिये उचित वातावरण, नमी एवं समय का होना आवश्यक है। इनको भूमि में मिलाने के लिये सस्ते एवं उचित कृषि यन्त्रों की भी आवश्यकता पड़ती है।

7) रासायनिक उर्वरक :–

पादप पोषण में रासायनिक उर्वरकों का विशेष महत्व है। खाद्यान्न उत्पादन में उर्वरकों का योगदान लगभग 50 प्रतिशत है। वर्तमान में हमारे देश में उर्वरकों की खपत लगभग 160 कि.ग्रा./हैक्टेयर है जो कि हमारे पड़ोसी देशों जैसे पाकिस्तान एवं चीन से कम है। रासायनिक उर्वरकों मे मुख्य रूप से नाइट्रोजन तत्व का ही प्रयोग किया जा रहा है जिससे भूमि मे पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ रहा है। अतः आज उर्वरकों के संतुलित उपयोग को अपनाने की अति आवश्यकता है। फॉस्फोरस एवं पोटाश के उर्वरकों का प्रयोग बुवाई के समय कूड़ों में बीज के नीचे किया जाना चाहिये। नाइट्रोजन का प्रयोग फसल में दो या तीन बार मे करना उचित रहता है।

8) औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ :–

कृषि आधारित एवं अन्य औद्योगिक कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थों में भी खूब पोषक तत्व होते हैं। इसके अलावा यह मृदा में जीवांश के भी स्रोत्र है। खेती में इनके उपयोग से पूर्व इनकी गुणवत्ता का आंकलन जरूरी है। क्योंकि कई बार इनमें फसलों एवं भूमि के जीवों के लिये हानिकारक पदार्थ विद्यमान होते हैं। इनका उपयोग क्षेत्र में इनकी उपलब्धता एवं गुणों पर

निर्भर करता है। गन्नें की मैली (प्रेसमड) पोषक तत्वों एवं कार्बनिक पदार्थों का एक अच्छा स्रोत्र है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु कुछ सुझाव :–

- मिट्टी जाँच के आधार पर उर्वरकों एवं कार्बनिक खादों की संस्तुत मात्रा का प्रयोग करें। उर्वरकों का संतुलित रूप में प्रयोग करें।
- फसल से पूर्व यदि हरी खाद का प्रयोग किया जा रहा है। तब 30 से 40 कि.ग्रा./हैक्टेयर उर्वरक नाइट्रोजन की कम मात्रा प्रयोग करें।
- जैव उर्वरक जैसे *एजोटोबेक्टर* एवं *एजोस्पाइरिलस* का प्रयोग करने पर लगभग 20 कि.ग्रा./हैक्टेयर कम नाइट्रोजन का प्रयोग करें।
- फास्फोरस विलयकारी जैव उर्वरकों के प्रयोग से विभिन्न फसलों में 15 सें 20 कि.ग्रा. फास्फोरस तत्व की बचत की जा सकती है।
- जैव उर्वरकों के प्रयोग के लिये आवश्यक सावधानियों का पालन अवश्य करें। अच्छी गुणवत्ता का जैव उर्वरक क्रय कर उसका प्रयोग निर्धारित अन्तिम तिथि से पूर्व करना चाहिये।
- उचित फसल चक्र अपनायें। बार–बार एक ही स्वभाव की फसल उगाने से मिट्टी के पोषक तत्वों का फसल सही उपयोग नहीं कर पाती है। इससे खरपतवार, कीट एवं बीमारियों का प्रकोप होने की भी अधिक सम्भावना रहती है।
- गर्मियों में गहरी जुताई करें। यह मिट्टी की भौतिक दशा सुधारनें के साथ ही कीट व्याधियों के नियंत्रण में भी सहायक है।
- समय पर बुवाई, पर्याप्त पौध एवं अन्य शस्य क्रियायें जैसे–समय पर सिंचाई, निराई एवं कीट व्याधियों आदि का नियंत्रण भी उर्वरक उपयोग क्षमता एवं भूमि के पोषक तत्वों के सक्षम अवशोषण में सहायक होते हैं।

❑❑❑

सरसों की उन्नत खेती में मधुमक्खियों का महत्व

दीप्ति श्रीवास्तव[1], संदीप कुमार सिंह[1], प्रशान्त यादव[2]

[1]कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, इंटीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ

[2] भा.कृ.अनुप. – सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

हमारे देश में मुख्य रुप से राई–सरसों, सोयाबीन, मूँगफली, सूरजमुखी, तिल, अलसी एवं रामतिल तिलहनी फसलें उगाई जाती हैं। इनमें राई–सरसों, सोयाबीन और मूँगफली सबसे महत्वपूर्ण तिलहनी फसलें हैं जिनका कुल तिलहन उत्पादन में लगभग 88 प्रतिशत योगदान है। सोयाबीन सबसे ज्यादा क्षेत्रफल पर उगाई जाने वाली तिलहनी फसल है, और इसके बाद सरसों और मूँगफली का स्थान आता है। सरसों मुख्य रुप से उत्तर भारत में उगाई जाती है, और देश में सरसों का सबसे ज्यादा उत्पादन करने वाला राज्य राजस्थान है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखण्ड, बिहार एवं पश्चिम बंगाल सरसों उगाने वाले अन्य प्रमुख राज्य हैं। खाद्य तेलों के लिए राई–सरसों एक अति महत्वपूर्ण फसल है। इसका तेल बेहद स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है तथा इसके तेल में औषधीय गुण भी पाये जाते हैं।

सरसों की खेती लगभग 60 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है और इसकी औसत उत्पादकता 15 कुन्टल/हैक्टेयर है। अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी निदेशालय के अनुसार कृषि एवं सहकारिता विभाग के अनुसार वर्ष 2019 में देश में कुल सरसों उत्पादन 93.4 लाख मीट्रिक टन हुआ। सरसों की बढ़ती उत्पादकता के बावजूद खाद्य तेलों की मांग प्रतिवर्ष बढ़ती ही जा रही है, और वर्ष 2027 तक भारत में खाद्य तेलों की मांग बढकर 24 किग्रा/व्यक्ति/वर्ष होने का अनुमान है। इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राई–सरसों की पैदावार बढ़ाना भारत के लिए अत्यन्त आवश्यक है और इस फसल की लागत/लाभ के बेहतर अनुपात को देखते हुए किसानों की आमदनी बढ़ाने में भी राई–सरसों फसल अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

वर्तमान समय में प्रगतिशील कृषकों द्वारा सहफसली खेती करके अच्छी आय प्राप्त की जा रही है जैसे सरसों की खेती के साथ साथ मधुमक्खी पालन। सरसों फसल की अच्छी उत्पादकता के लिए वृद्धि एवं विकास के साथ ही अच्छी निषेचन की प्रक्रिया का होना आवश्यक है। मधुमक्खियां शहद ही नहीं देती बल्कि सरसो में निषेचन प्रक्रिया में भी भाग लेती हैं। सभी परागकण वाहकों में इनका प्रमुख स्थान है। इनके द्वारा पुष्पों से पराग इक्कठा करते समय परागकण भी एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर हस्तांतरित हो जाते हैं जिससे सभी पुष्पों में भरपूर मात्रा में गुणवत्ता युक्त बीज उत्पन्न होते हैं। इससे नकदी फसलों की गुणवत्ता में सुधार होता है। परागण के फलस्वरूप सरसों के उत्पादन में 10–15 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी जा सकती है।

भारत में प्राचीन काल से ही मधुमक्खी पालन का अभ्यास किया जाता रहा है, परंतु यह वर्तमान में प्रचलित तकनीक से सर्वथा भिन्न है। सर्वप्रथम 1815 ई. में लानाड्रप नामक अमेरिकन वैज्ञानिक ने कृत्रिम छत्तों का आविष्कार किया था। भारत में मधुमक्खी पालन की शूरूआत 1920 के दशक में दक्षिण भारत से हुई थी। कुटीर उद्योगों के रूप में प्रांतीय स्तरों पर इसका विस्तार कृषि पर रॉयल कमीशन की सिफारिशों के बाद 1930 ई. से हो पाया था। वर्ष 1953 में अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना हुई व मधुमक्खी पालन को तकनीकी व्यवसाय का स्वरूप देने के लिए बोर्ड ने पूना में केंद्रीय मधुमक्खी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की। बोर्ड द्वारा इस अनुसंधान केंद्र को, विभिन्न राज्यों में मधुमक्खी पालन के प्रचार प्रसार व प्रशिक्षण केंद्र स्थापित करने का कार्यभार सौंपा गया।

ग्रामीण तथा कुटीर उद्योग के अंर्तगत मधुमक्खी पालन से स्वरोजगार के क्षेत्र में अच्छे अवसर विकसित होने की अपार संभवनाएं हैं। सरसों की खेती वाले क्षेत्रों में नवम्बर से फरवरी माह तक सरसों के फूलों की उपलब्धता बहुतायत में होती है व यह समय इन क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन के लिए सर्वश्रेष्ठ होता है।

ग्रामीण क्षेत्र व कृषि के संदर्भ में मधुमक्खी पालन की उपादेयता :–

- पूर्ण कुशलता व विशेषज्ञता के साथ व्यक्तियों को लाभप्रद स्वरोजगार का अवसर प्रदान करता है।
- सीानीय संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग कर लाभार्जन कराता है।

- अन्य उद्योगों की अपेक्षाकृत इस व्यवसाय में कम निवेश की आवश्यकता होती है।
- मधु, मोम व मौनवंश में वृद्धि कर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
- मधुमक्खी पालन से न केवल शहद व मोम ही प्राप्त होता है वरन रॉयल जेली नामक पदार्थ भी प्राप्त होता है जिसकी विदेशों में अत्यधिक मांग है।
- विभिन्न फसलें, सब्जियॉ, फलोद्यान व औषधीय पौधे प्रति वर्ष फल बीज के अतिरिक्त पुष्प–रस और पराग को धारण करते हैं, परन्तु दोहन के अभाव में ये नष्ट हो जाते हैं। मधुमक्खी पालन द्वारा इनका उचित उपयोग संभव हो पाता है।
- जिन फसलों तथा फलदार वृक्षों पर परागण कीटों द्वारा सम्पन्न होता है, मधुमक्खियों की उपस्थिति में उन की पैदावार में वृद्धि होती है। सामान्य तथा परागण वाली फसलों की पैदावार 20 से 30 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

विभिन्न सर्वेक्षणों के अनुसार वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है की मधुमक्खियों से होने वाला लाभ मधुमक्खी पालकों के साथ–साथ उन काश्तकारों व बागवानों को भी मिलता है, जिनके खेतों या बागों में यह परागण व मधु संग्रहण हेतु जाती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि इस व्यवसाय का ग्रामीण क्षेत्रों में व विशेष रूप से सरसों की खेती करने वाले स्थानों में विस्तृत प्रचार–प्रसार किया जाए।

मधुमक्खियों की पांच महत्वपूर्ण प्रजातियां इस प्रकार हैं।

1. रॉक मधुमक्खी, *एपीस डोर्सेटा*
2. भारतीय छत्ता मधुमक्खी, *एपीस सेराना इंडिका*
3. छोटी मधुमक्खी, *एपीस फ्लोरिया*
4. यूरोपीय या इतालवी मधुमक्खी, *एपीस मेलीफेरा*
5. डैमर मधुमक्खी या स्टिंगलेस मधुमक्खी, *मेलिपोना इरिडीपेनिस*

इनमें प्रथम चार प्रजातियों को पालन हेतु प्रयोग किया जाता है। हालॉकि *मैलापोना* प्रजाति की मधुमक्खी का कोई आर्थिक महत्व नहीं होता है क्योंकि वह मात्र 20–30 ग्राम शहद ही एकत्रित कर पाती है, परन्तु पौधों के परागण में इस प्रजाति का भी महत्व है।

एपीस डोर्सेटा :– यह स्थानीय क्षेत्रों में पहाड़ी मधुमक्खी के नाम से जानी जाती है। यह मक्खी लगभग 1200 मी. की ऊँचाई तक पायी जाती है व बड़े वृक्षों, पुरानी इमारतों इत्यादि पर ही छत्ता निर्मित करती है। अपने भयानक स्वभाव व तेज डंक के कारण इसको पालना मुश्किल होता है। इसमें वर्षभर में 30–40 किलो तक शहद प्राप्त हो जाता है।

एपीस फ्लोरिया :– स्वभाव से जंगली यह मधुमक्खी खुले वातावरण में छत्ता बनाती है। ये मधुमक्खियां इकहरा छत्ता पेड़ की टहनी के बीच में बनाती हैं और मौसम के अनुसार स्थान परिवर्तन करती है लेकिन अधिक दूर तक नहीं जाती। इस प्रजाति की मक्खियां बाकी तीन प्रकार की मक्खियों से छोटी होती है। आमतौर पर ये मधुमक्खियाँ छोटे आकार के फूल, जड़ी बूटियों से शहद इक्ट्ठा करती हैं। इस मक्खी के एक वंश से वर्ष भर में शहद पैदा करने की क्षमता 200 ग्राम–1.5 किलोग्राम ही है।

संगना एपीस इंडिका :– यह भारतीय मूल की ही प्रजाति है तथा पहाड़ी व मैदानी जगहों में पाई जाती है। इसकी आकृति *एपीस डोर्सेटा* व *एपीस फ्लोरिया* के मध्य की होती है। यह बंद घरों में, गुफओं में या छुपी हुई जगहों पर घर बनाना अधिक पसंद करती है। इस प्रजाति की मधुमक्खियों को प्रकाश नापसंद होता है। एक वर्ष में इनके छत्ते से 2–5 कि. ग्रा. तक शहद प्राप्त होता है।

एपीस मैलीफेम :– इसे इटैलियन मधुमक्खी भी कहते हैं। यह आकार व स्वभाव में भारतीय महाद्वीपीय प्रजाति जैसी है। इसका रंग भूरा, अधिक परिश्रमी आदत होने के कारण यह पालन के लिए सर्वोत्तम प्रजाति मानी जाती है। इसमें छत्ते छोड़ के भागने की आदत कम होती है व यह पराग व मधु प्राप्ति हेतु 2–2.5 किमी की दूरी भी तय कर लेती है। मधुमक्खी के इस वंश से वर्षभर में औसतन 50–60 किग्रा. शहद प्राप्त हो जाता है। इस मधुमक्खी के पालन में प्रयुक्त मौन गृह में लगभग 40–80 हजार तक मधुमक्खियाँ होती हैं, जिनमें एक रानी मक्खी, कुछ सौ नर व शेष श्रमिक मधुमक्खियाँ होती हैं।

रानी मक्खी :–

यह लम्बे उदर व सुनहरे रंग की मधुमक्खी होती है जिसे

आसानी से पहचाना जा सकता है। इसका जीवन काल लगभग तीन वर्ष का होता है। सम्पूर्ण मौन परिवार में एक ही रानी होती है जो अंडे देने का कार्य करती है, जिनकी संख्या 2500 से 3000 प्रतिदिन होती है। यह दो प्रकार के अंडे देती है, गर्भित व अगर्भित अंडे। इसके गर्भित अंडे से मादा व अगर्भित अंडे से नर मधुमक्खी विकसित होती है।

नर मधुमक्खी या ड्रोंस :–

नर मधुमक्खी गोल, काले उदर युक्त व डंक रहित होती है। यह प्रजनन कार्य सम्पन्न करती है व इस काल में बहुतायत में होती है। रानी मधुमक्खी से प्रजनन उपरान्त नर मधुमक्खी मर जाती है। इसके तीन दिन पश्चात् रानी अंडे देने का कार्य प्रारंभ कर देती है।

मादा मधुमक्खी या श्रमिक :–

पूर्णतया विकसित डंक वाली श्रमिक मक्खी मौनगृह के समस्त कार्य को संचालित करती है। इनका जीवनकाल 40–45 दिन का होता है। श्रमिक मक्खी कोष से पैदा होने के तीसरे दिन से कार्य करना प्रारंभ कर देती है। मोम उत्पादित करना, रॉयल जेली स्रावित करना, छत्ता बनाना, छत्ते की सफाई करना, छत्ते का तापक्रम बनाए रखना, कोषों की सफाई करना, वातायन करना, भोजन के स्रोत की खोज करना, पुष्प– रस को मधु रूप में परिवर्तित कर संचित करना, प्रवेश द्वार पर चौकीदारी करना इत्यादि कार्य मादा मधुमक्खी द्वारा किए जाते हैं।

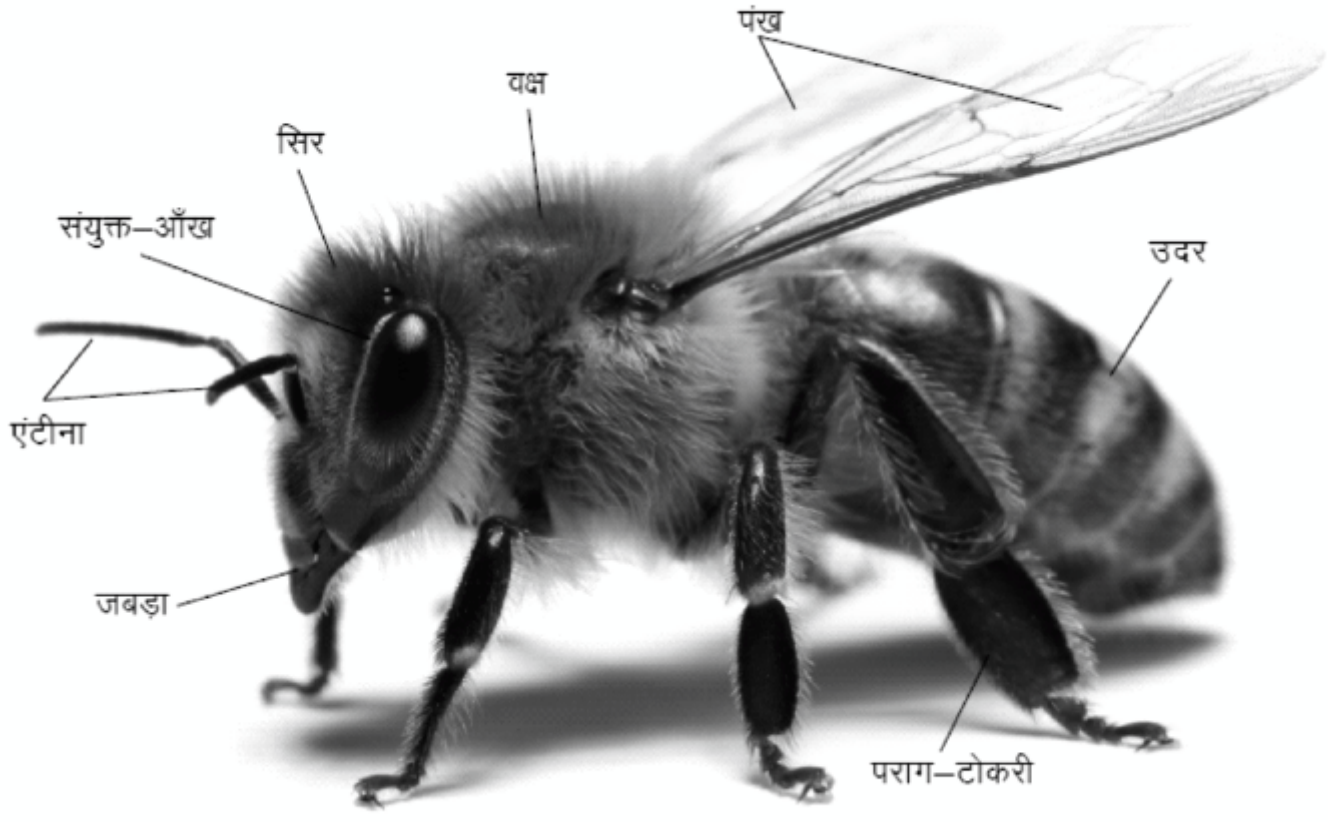

चित्र : श्रमिक (मादा) मधुमक्खी के शरीर की संरचना

मौन गृह :–

प्राकृतिक रूप से मधुमक्खी अपना छत्ता पेड़ के खोखले भाग दिवार के कोनों, पुराने खण्ड़हरों आदि में लगाती है। इनमें शहद प्राप्ति हेतु इन्हें काटकर निचोड़ा जाता है, परन्तु इस क्रियाविधि में अंडा लार्वा व प्यूपा आदि का रस भी शहद में मिल जाता है साथ ही मौनवंश भी नष्ट हो जाता है। प्राचीन काल में जब मधुमक्खी पालन व्यवसाय का तकनीकी विकास नहीं हुआ था तब यही प्रक्रिया शहद प्राप्ति हेतु अपनाई जाती थी। इससे बचने के लिए वैज्ञानिकों ने पूर्ण अध्ययन व विभिन्न शोधों के उपरांत मधुमक्खी पालन हेतु मौनगृह व मधु निष्कासन यंत्र का आविष्कार किया।

मौनगृह लकड़ी का एक विशेष प्रकार से बना बक्सा होता है। यह मधुमक्खी पालन में सबसे महत्वपूर्ण उपकरण होता है। मौनगृह का सबसे निचला भाग तलपट कहलाता है, यह लगभग 381 मिमी. लम्बे, 266 मिमी. चौड़ाई व 50 मिमी. ऊँचाई वाले लकड़ी के पट्टे का बना होता है। तलपट के ठीक ऊपर वाला भाग शिशु खंड कहलाता है। इसकी बाहरी माप 286 मिमी. लम्बी, 266 मिमी. चौड़ी व 50 मिमी. ऊँची होती है। शिशु खंड की आन्तरिक माप 240 मिमी. लम्बी, 320 मिमी. चौड़ी व 173 मिमी. ऊँची होती है। शिशु खंड में अंडा, लार्वा, प्यूपा पाया जाता है। मौन गृह के दस भाग में 10 फ्रेम होते हैं। श्रमिक मधुमक्खी द्वारा शहद का भंडारण इसी कक्ष में किया जाता है। इसके अलावा मौनगृह में दो ढ़क्कन होते हैं : आन्तरिक व बाह्य ढ़क्कन। आन्तरिक ढ़क्कन से एक पट्टी जैसी आकृति का होता है व इसके बिल्कुल मध्य में एक छिद्र होता है। जब मधुमक्खियाँ शिशु खंड में हो तो आन्तरिक ढ़क्कन शिशुखंड पर रखकर फिर बाह्य ढ़क्कन से ढ़का जाता है। इस ढ़क्कन के ऊपर एक टिन की चादर लगी रहती है जो वर्षा ऋतू में पानी के अंदर प्रवेश से मौनगृह की रक्षा करती है।

मौनगृह को लोहे के एक चौकोर स्टैंड पर स्थापित किया जाता है। स्टैंड के चारों पायों के नीचे पानी या तेल से भरी प्यालियाँ रखी जाती हैं। जिसके फलस्वरूप चीटियाँ मौगगृह में प्रवेश नहीं कर पाती हैं।

मधुमक्खी पालन व मौनगृह प्रबंध :–

मौन प्रबंध :–

मौनगृह का निरीक्षण हर 9–10 दिनों के पश्चात करना अति आवश्यक है। निरीक्षण के दौरान मुंह रक्षक जाली व दास्तानों का प्रयोग किया जाता है। उस समय हल्का धुआं भी करते हैं। जिससे मधुमक्खियाँ, शांत बनी रहती हैं। इसमें मौनगृह के दोनों भागों का पृथक–पृथक निरीक्षण किया जाता है।

मधुमक्खी निरीक्षण :–

मधुखंड के निरीक्षण के समय यह देखते हैं कि किन–किन फ्रेम (चौखटों) में शहद है। जिन चौखटों में शहद 75–80 प्रतिशत तक जमा है, उस फ्रेम को निकाल कर उसकी मधुमक्खियाँ खंड में ही झाड़ देते हैं। इसके पश्चात जमा शहद को चाकू से खरोंच कर मधुनिष्कासन मशीन द्वारा परिशोषित मधु प्राप्त करते हैं व खाली फ्रेम को पुनः मधुखण्ड में स्थापित कर देते हैं।

शिशुखंड निरीक्षण :–

शिशुखंड निरीक्षण में सर्वप्रथम रानी मक्खी को पहचान कर उसकी अवस्था का जायजा लिया जाता है यदि रानी बूढ़ी हो गई हो या चोटिल हो तो उसके स्थान पर नई रानी मक्खी प्रवेश कराई जाती है। नर मधुमक्खी का रंग काला होता है, यह केवल प्रजनन के काम आती है इसलिए इनके निरिक्षण की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। चौखटों के मध्य भाग में पराग व मकरंद होता है।

स्थान परिवर्तन व पैकिंग निरीक्षण :–

फसल चक्र में परिवर्तन के साथ मधुमक्खियों के लिए पराग व मकरंद का अभाव होने लगता है। इस स्थिति में मौनगृहों का स्थानांतरण ऐसे स्थानों पर किया जाता है जहाँ विभिन्न फूलों व फलों वाली फसलें प्रचुरता में उपलब्ध हों। स्थानांतरण हेतु पैकिंग कार्य शाम के समय किया जाता है, जिससे सभी श्रमिक मक्खियाँ अपने मौनगृह में वापस आ जाएँ। निरीक्षण के दौरान यह देखा जाना चाहिए कि वहाँ पराग व मकरंद उपयुक्त मात्रा में है या नहीं, इसमें कमी होने पर शक्कर का घोल प्रदान किया जाता है।

पर्याप्त मात्रा में पराग व मकरंद प्राप्त होने पर मौनवंश में भी वृद्धि अधिक होती है। इस प्रकार हुई वंश वृद्धि की व्यवस्था दो प्रकार से की जाती है। मौनवंश से नए छत्ते बनवाकर व मौनवंश का विभाजन करके।

शहद निष्कासन :–

मधुखंड में स्थित चौखटों में जब 75 से 80 प्रतिशत तक तक शहद जमा हो जाए तो उस शहद का निष्कासन किया जाता है। इसके लिए सबसे पहले चौखटों से मधुमक्खियाँ झाड़कर मधु खंड में डाल देते हैं। इसके पश्चात चाकू से या तेज गर्म

पानी डालकर छत्ते से मोम की ऊपरी परत उतारते हैं फिर इस चौखट को शहद निष्कासन यंत्र में रखकर हैंडिल द्वारा घुमाते हैं। इसमें अपकेन्द्रिय बल द्वारा शहद बाहर निकल जाता है व छत्ते की संरचना को भी कोई नुकसान नहीं पहूंचाता है। इस चौखट को पुनः मधुखंड में स्थापित कर दिया जाता है एवं मधुमक्खियाँ छत्ते के टूटे हुए भागों को ठीक करके पुनः शहद भरना प्रारंभ कर देती हैं। इस प्रकार प्राप्त शहद को मशीन से निकाल कर एक टंकी में 48–50 घंटे तक डाल देते हैं, ऐसा करने से शहद में मिले हवा के बूलबूले, मोम आदि शहद की ऊपरी सतह पर व अन्य मैली वस्तुएँ नीचे सतह पर एकत्र हो जाती है। शहद को बारीक़ कपड़े से छानकर व प्रोसेसिंग के उपरांत स्वच्छ व सूखी बोतलों में भरकर बाजार में बेचा जा सकता है। इस प्रकार न तो छत्ते और न ही लार्वा, प्यूपा आदि नष्ट होते हैं और शहद भी शुद्ध प्राप्त होता है।

सरसों उत्पादन में शहद मधुमक्खियों की भूमिका :–

1. सरसों में परागण वायु, जल, कीट द्वारा किया जा सकता है।
2. मधुमक्खियां प्रमुख कीट वर्ग के अंतर्गत आती हैं जो सरसों में परागण वाहक के रूप में कार्य करती हैं।
3. मधुमक्खियां परागण क्रियाविधि को सुगम बनाती है।
4. सरसों का फूल प्रकृति में पीला होता है जो मधुमक्खियों को आकर्षित करता है। मधुमक्खी द्वारा उठाए गए पुष्प के पराग कणों को उठाकर दूसरे फूल में ले जाया जाता है– यह अभ्यास खुले परागण तंत्र की दर को बढ़ाता है और यह प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध है कि खुला –परागण अधिक उपज पैदा कर सकता है।
5. इससे परागण दर को बढ़ती है – इसलिए एक ही फली से अधिक बीज निकल सकते हैं।
6. प्रति पौधे बीजों की संख्या में वृद्धि से प्रति फली उपज में वृद्धि होती है।
7. प्रति फली उपज में वृद्धि, बढ़ी हुई उपज के समानुपाती होती है।
8. ऐसे कई प्रायोगिक प्रमाण हैं जो साबित करते हैं कि मधुमक्खी परागण से उपज में 10–22 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है।
9. तिलहन फसलों का परागण करने में शहद मधुमक्खियां बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शहद मधुमक्खी द्वारा परागण न केवल अधिक पैदावार में सहायक है। मधुमक्खी फली/पौधे की अधिक संख्या बढ़ाने में, फली की लंबाई, बढ़ाने से, बीज/फली की संख्या इत्यादि बढ़ाने में सहायक होती हैं।
10. शहद उत्पादन से किसानों की आय बढ़ती है।

इस प्रकार भारत में मधुमक्खी पालन एक महत्वपूर्ण कृषि व्यवसाय है जो न केवल किसानों को अच्छी आमदनी का वादा करता है बल्कि कृषि उत्पादकता बढ़ाने में भी मदद करता है। सरसों के किसानों के लिए भी मधुमक्खी पालन आय का एक अच्छा स्रोत है, खासकर उस अवधि के दौरान जब फसल की वृद्धि की प्रक्रिया चल रही होती है। एक सफल शहद मधुमक्खी फार्म के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जो विभिन्न संस्थानों और कृषि विज्ञान केंद्रों पर समय–समय पर दिया जाता है।

इस प्रकार मधुमक्खी पालन सरसों की खेती करने वाले किसानों के लिए एक लाभदायक उपक्रम है।

❑❑❑

रॉयल जैली : एक चमत्कारी पदार्थ एवं उसके स्वास्थ्य लाभ

अर्चना अनौखे[1], प्रभू दयाल मीना[2], रामसिंह[2]

[1]भा.कृ.अनुप. – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

[2]भा.कृ.अनुप. – सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

रॉयल जैली एक दुधिया स्त्राव है जो मधुमक्खी के ग्रसनी ग्रंथियों से प्राप्त होता है। ये विशेष रूप से रानी मधुमक्खी का भोजन है, जो रानी मधुमक्खी को 3–5 वर्ष तक जीवित रखने में सक्षम है जबकि साधारण शहद मक्खियां 4–6 सप्ताह तक जीवित रहती है। सरसों की फसल करीब 70 लाख हेक्टेयर भूमि में उगाई जाती है। जिसके उत्पादन में मधुमक्खी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं और हजारों टन शहद का उत्पादन भी होता हैं। रॉयल जैली मधुमक्खीयों द्वारा उत्पादित एक ऐसा अमूल्य एवं चमत्कारी पदार्थ है जिसके गुणों का पूर्ण रूप से वर्णन करना बहुत कठिन है।

रॉयल जैली एक अति पौष्टिक पदार्थ है जो 6 से 13 दिन की मधुमक्खीयों के मुखग्रन्थियों के द्वारा उत्पादित किया जाता है। इसका प्रयोग रानी एवं मौन शिशुओं को पालने में मधुमक्खीयों द्वारा किया जाता है। निशेचित अण्डों की सूड़ी को पर्याप्त मात्रा में प्रारम्भ से ही रॉयल जैली दी जाती है जिससे उस शिशु का विकास रानी के रूप में होता है। रानी के परिवार के सभी सदस्यों का जीवनकाल मात्र 3–6 महीने तक का हो सकता है। इस प्रकार शरीर वृद्धि एवं जीवन काल पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिये ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य भी इस रॉयल जैली की थोड़ी सी मात्रा को प्रतिदिन भोजन में प्रयोग करें तो उनकी वृद्धि विकास एवं जीवनकाल पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि हम रानी मधुमक्खी तरह की पूर्ण रूप से रॉयल जैली पर निर्भर नहीं रह सकते लेकिन जो भी मात्रा उपलब्ध हो यदि उसका प्रयोग टॉनिक के रूप में किया जाये तो यह पदार्थ निश्चित रूप से अति लाभकारी सिद्ध होगा।

आज के बदलते हुये परिवेश में जब मानव की भोजन के बाद स्वास्थ्य की बात आती है तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। इस बहुमूल्य पदार्थ की मांग की महत्ता को देखते हुये इसके उत्पादन की तरफ ध्यान आकृर्षित करना किसान, समाज एवं देश के लिये अति हितकर सिद्ध होगा। चीन, जो टनों में रॉयल जैली का उत्पादन एवं निर्यात कर रहा है वहीं भारत अपने देश की आवश्यकता की पूर्ति भी नही कर पा रहा है जिसका मुख्य कारण पारम्परिक ढंग से मौन पालन करना एवं सरकार का ध्यान इसकी तरफ न होना माना जा सकता है। भारत में ज्यादातर लघु एवं मध्यम मधु व्यवसायी हैं जिनके पास 50 से 500 तक मौन पेटिया ही उपलब्ध हैं। इन परिस्थितियों में रॉयल जैली का उत्पादन व्यवसायिक स्तर पर सम्भव नहीं है। पारम्परिक मौन पालन के कारण मौन उत्पादों में विविधता न होने से भी अमूल्य उत्पादों का उत्पादन नहीं हो पा रहा है। इसके लिये यह जरूरी हो जाता है कि मौन पालकों को मौन उत्पादों में विविधता लाने का ज्ञान दिया जाये एवं ऐसे कार्य करने के लिये प्रोत्साहित भी किया जाये जिससे व्यवसायिक स्तर पर रॉयल जैली पैदा की जा सके।

रॉयल जैली शिशु रानी एवं प्रौढ़ रानी को पर्याप्त मात्रा में खिलायी जाती है। यह नर मौनों को अण्डे के निकलने की तीन दिन तक की अवस्था तक खिलायी जाती है। यह लगभग दही जैसा पदार्थ होता है जिसमें कुछ तेज गन्ध एवं खट्टा स्वाद होता है। इसकी संरचना सरल होती है। रॉयल जैली में मनुष्यों के लिये सभी आवश्यक एमीनो अम्ल उपस्थित होते हैं इसके साथ ही कार्बोहाइड्रेट जैसे ग्लूकोस, फ्रेक्टोस, मेलीवाइओस, ट्राइटोस, माल्टोस एवं सुक्रोस होते हैं। विटामिन बी प्रचुर मात्रा में होती है। विटामिन सी की भी कुछ मात्रा उपलब्ध होता है। रॉयल जैली खनिज सामग्री से भरा पड़ा है। इसमें मुख्यरूप से मैग्नीशियम, कैल्शियम, क्लोराइड, मैंग्नीज, सिनिकॉन, लौह, पोटैशियम, सल्फर, पोटाश, जिंक, कॉपर, इत्यादि पाये जाते है, जो मानव शरीर में उर्जा के साथ–साथ शारीरिक क्रियाऐं सुचारू रूप से चलाने में सहायता करता है। रॉयल जैली में मौजूद पोषक सामग्री में विटामिन ए, सी, डी और ई होते है और यह विटामिन बी कॉम्प्लेक्स का एक समृध प्राकृतिक भंडार है। एक प्रमुख घटक विटामिन बी–5 है, जो शरीर में सबसे महत्वपूर्ण पदार्थों में से एक है, प्रोटीन, वसा, कार्बोहाईड्रेट और कई हॉर्मोन्स के संश्लेषण और चयापचय के लिए आवश्यक है। रॉयल जैली में सभी आवश्यक अमीनो अम्ल भी मौजूद होते है, जो हमारे शरीर के लिए बेहद लाभदायक है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने खोज से यह प्रमाणित किया गया है कि छः महिने तक इसका लगातार सेवन करने से यह एरिश्प्रो पोएसिप, ग्लुकोस स्तर तथा बनाम रखता है।

हाल ही में प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के तहत गठित मधुमक्खी पालन विकास समिति (बीडीसी) ने प्रो. देबरॉय की अध्यक्षता में अपनी रिपोर्ट जारी की है। बीडीसी का गठन भारत में मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने के नए तौर तरीकों की पहचान करने के उद्देश्य से किया गया है ताकि इसके जरिए कृषि उत्पादकता, रोजगार सृजन और पोषण सुरक्षा बढ़ाने तथा जैव विविधता को संरक्षित रखने में मदद मिल सके। इसके अलावा, किसानों की आय दोगुना करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में भी मधुमक्खी पालन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय खाद्य एंव कृषि संगठन–एफएओ के 2017–18 के आंकड़ों के अनुसार शहद उत्पादन के मामले में भारत (64.9 हजार टन शहद उत्पादन के साथ) दुनिया में आठवें स्थान पर रहा जबकि चीन (551 हजार टन शहद उत्पादन) के साथ पहले स्थान पर रहा। बीडीसी की रिपोर्ट के अनुसार मधुमक्खी पालन को केवल शहद और मोम उत्पादन तक सीमित रखे जाने की बजाए इसे परागण, मधुमक्खी द्वारा छत्ते में इकठ्ठा किए जाने वाले पौध रसायन, रॉयल जैली और मधुमक्खी के डंक में युक्त विष को उत्पाद के रूप में बेचने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है जिससे भारतीय किसान काफी लाभान्वित हो सकते हैं। खेती और फसलों के क्षेत्र के आधार पर, भारत में लगभग 200 मिलियन मधुमक्खी आवास क्षेत्र की क्षमता है, जबकि इस समय देश में ऐसे 3.4 मिलियन मधुमक्खी आवास क्षेत्र हैं। मधुमक्खियों के आवास क्षेत्र का दायरा बढ़ने से न केवल मधुमक्खी से संबंधित उत्पादों की संख्या बढ़ेगी बल्कि समग्र कृषि और बागवानी उत्पादकता को भी बढ़ावा मिलेगा।

देश में मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने के लिए सरकार द्वारा हाल में किये गये प्रयासों के कारण 2014–15 और 2017–18 के दौरान कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन बोर्ड के आंकड़ों के अनुसार शहद का निर्यात 29.6 हजार टन से बढ़कर 51.5 हजार टन पर पहुंच गया। हालांकि इस क्षेत्र में अभी भी काफी चुनौतियां मौजूद है पर इसके साथ ही इस उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए काफी संभावनाएं भी है। बीडीसी की यह रिपोर्ट जनसाधारण के लिए सार्वजनिक रूप से भी उपलब्ध करायी गई है।

देश में मधुमक्खी पालन के उद्योग को बढ़ावा देने के लिए बीडीसी की रिपोर्ट में निम्नलिखित सुझाव दिये गये हैं –

- मधुमक्खीयों को कृषि उत्पाद के रूप में देखना तथा भूमिहीन मधुमक्खी पालकों को किसान का दर्जा देना।
- मधुमक्खीयों के पंसद वाले पौधे सही स्थानों पर लगाना तथा महिला सहायता समूहों को ऐसे बागानों का प्रबंधन सौंपना।
- राष्ट्रीय मधुमक्खी बोर्ड को संस्थागत रूप देना तथा कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के तहत इसे शहद और परागण बोर्ड का नाम देना। ऐसा निकाय कई तंत्रों के माध्यम से मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने में मदद करेगा। इसमें नए एकीकृत मधुमक्खी विकास केंद्रों की स्थापना, उद्योग से जुड़े लोगों को और ज्यादा प्रशिक्षित करना, शहद की कीमतों को स्थिर बनाए रखने के लिए एक कोष का गठन तथा मधुमक्खी पालन के महत्वपूर्ण पहलुओं पर डेटा संग्रह जैसी बातें शामिल होंगी।
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के तत्वावधान में उन्नत अनुसंधान के लिए एक विषय के रूप में मधुमक्खी पालन को मान्यता।
- मधुमक्खी पालकों का राज्य सरकारों द्वारा प्रशिक्षण और विकास।
- शहद सहित मधुमक्खियों से जुड़े अन्य उत्पादों के संग्रहण, प्रसंस्करण और विपणन के लिए राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर अवसंरचनाओं का विकास।
- शहद और अन्य मधुमक्खी उत्पादों के निर्यात को आसान बनाने के लिए प्रक्रियाओं को सरल बनाना और स्पष्ट मानकों को निर्दिष्ट करना।

रॉयल जैली में मौजूद आवश्यक घटक

अवयव	प्रतिशत
पानी	65 से 70
प्रोटीन	15 से 18
वसा	2 से 6
अन्य पदार्थ	9 से 18
लवण	0.7 से 1.2

रॉयल जैली के संभावित लाभ :–

इसमें विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं, जिनका स्वास्थ्य बढ़ाने में बहुत उपयोगिता है। जैसे कि ग्लाइकोप्रोटिन, विटामिन बी कॉम्प्लेक्स, वसा तथा प्रोटीन आदि। यह एंटी ऑक्सीडेंट और सूजनरोधी होता है। यह शरीर में कोलेस्ट्रॉल स्तर को संतुलन में रखकर हृदय रोग को कम करता है। यह त्वचा की मरम्मत एवं जख्म भरने में काफी उपयोगी है।

रॉयल जैली में उपस्थित विशेष प्रोटीन रक्तचाप को कम करता है। खून में शक्कर की मात्रा, उपचायक तनाव तथा सूजन को कम करता है। प्रति उपचायक गुण स्वस्थ मस्तिष्क को स्वस्थ बनाए रखने में सहायता करते है। अश्रुबहाव को बढ़ाते है तथा ड्राई आई सिन्ड्रोम या आँखों के सूखापन को कम करता है। बुढ़ापा विरोधक तत्व, बुढ़ापा रोकने में मदद करते है। शरीर की स्वस्थ प्रतिरक्षा प्रणाली में मद्द करते है। चर्म रोग के उपचार से होने वाले दुष्प्रभाव को कम करते है। रजोनिवृत्ति के दुष्प्रभाव को कम करते है। अस्थमा, बुखार, लीवर की बीमारी, अग्नाशयशोथ, अनिद्रा, महिलाओं को हर महिने होने वाली समस्या, पेट के आंत का अलसर तथा वृक्क की बीमारियों को ठीक करने में उपयोग किया जाता है। रॉयल जैली शरीर की सामान्य स्थिति में सुधार करती है। इससे मानसिक और शरीरिक क्षमता बढ़ती है। वृद्ध लोगो की आँखों की रोशनी में सुधार करने में मदद करती है। सीने में या छाती का दर्द, हृदय रोग (एन्जासा पेक्टोरिस), धमनी गठिया, अवसाद आदि पर रॉयल जैली का लाभकारी प्रभाव पड़ता है। रॉयल जैली एक मजबूत कामोद्दीपक भी होती है। रक्त में कोलेस्ट्रोल को कम करता है। रॉयल जैली से कफ और तपेदिक उपचार में मद्द मिलती है। रॉयल जैली माईग्रेन, पेट दर्द और थकान के मामलों में मद्द करता है। रॉयल जैली में मजबूत जीवाणुरोधी और एन्टी वायरल गुण होता है। रॉयल जैली प्रजनन क्षमता को बढ़ाती है और नपुंसकता को कम करती है। रॉयल जैली त्वचा रोगों की समस्या में मदद कर सकती है क्योंकि इसमें बड़ी मात्रा में विटामिन बी कॉम्प्लेक्स (पेन्टोथेनिक अम्ल) होते हैं, जो बालों के विकास में फायदेमंद है। रॉयल जैली मानव शरीर की वृद्धि एवं विकास में सहायक होती है। इसके प्रयोग से मस्तिष्क का विकास होता है। ऐसा मानना है कि इसको लगातार प्रयोग से जीवनकाल लम्बा, शरीर स्वस्थ व मस्तिष्क का विकास होता है।

कितना सुरक्षित है रॉयल जैली का उपयोग :–

अगर रॉयल जैली को सही तरीके से लिया जाए तो ये ज्यादातर सभी के लिए सुरक्षित है। अगर किसी खास चीज में रॉयल जैली और मधुमक्खी पराग मिले हैं तो इसका इस्तेमाल दो महीने तक कर सकते हैं। इसके अलावा रॉयल जैली और फूल पराग के मिश्रण को तीन महीने तक प्रयोग में लिया जा सकता है। रॉयल जैली को त्वचा पर सही तरीके से लगाया जाए तो इसका आपको किसी तरह का नुकसान नहीं होगा। हालांकि अगर इसे खोपड़ी/सिर पर लगाया जाए तो इससे एलर्जी और सूजन हो सकती है।

किन लोगों को इसके प्रयोग से बचना चाहिए :–

निम्नलिखित शारीरिक स्थिति में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए जैसेः–

- स्तनपान कराने वाली और गर्भवती महिलाओं को इसका इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।
- डर्मेटाइटिस के रोगी को इससे उपयोग से बचना चाहिए। इसके प्रयोग से डर्मेटाइटिस बिगड़ भी सकता है।
- अगर आपका रक्तचाप कम रहता है तो भी इसे न लें वर्ना आपका रक्तचाप पहले से भी ज्यादा कम हो जाएगा।
- अगर आप किसी दूसरी दवाइयों का सेवन कर रहे हैं तो इसे लेने की गलती न करें।
- अगर आप अस्थमा या किसी एलर्जी से ग्रसित हैं तो भी इसका प्रयोग न करें।

❑❑❑

मौसम विविधता का सरसों की फसल पर प्रभाव

मुरलीधर मीणा, चेतन कुमार दोतानियाँ, प्रमोद कुमार राय

भा.कृ.अनुप. – सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर, राजस्थान

मौसम परिवर्तन की विविधता का कृषि उपज से गहरा संबंध है। फसलों की पैदावार तथा गुणवत्ता में जलवायु परिवर्तन के कारण कमी पायी गई है। मौसम की विविधता का सरसों की फसल पर प्रभाव जानने के लिये कृषि अनुसंधान संस्थानों के अनुसंधान फार्म पर सरसों की किस्मों को भिन्न–भिन्न समय पर बोया जाता है। इस प्रयोग में फसल के विभिन्न चरणों का अवलोकन किया जाता है। फसल उत्पादन के सभी वृद्धि पैरामीटर जैसे पक्षी क्षेत्रफल सूचकांक, बायोमास, हरित तत्व सूचकांक का सरसों की विभिन्न प्रजातियों पर मौसम विविधता में अध्ययन से पता चलता है की ये सूचकांक मध्य अक्टूबर माह में बोयी गई सरसों फसल की तुलना में कम पाये जाते है। नवम्बर माह में बोयी गई फसल में पैदावार तथा तेल की प्रतिशत मात्रा भी कम पायी गई। चेंपा का आक्रमण भी सभी किस्मों में नवम्बर माह में बोई गई फसल पर अक्टूबर माह में बोयी गई फसल की तुलना में ज्यादा पाया जाता है। नवम्बर माह में बोई गई फसल की पैदावार में अक्टूबर माह में बोयी गयी फसल की तुलना में 15 से 60 प्रतिशत की कमी पायी गई। मौसमी फसल की उपज व बढ़ोतरी में अनुकूल मौसम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है इसलिए मौसमीय तत्वों का अध्ययन करके हमें किसी भी फसल की उपयुक्त किस्मों की बुवाई का उपयुक्त समय ज्ञात करना चाहिए। ऊष्म इकाईयों जैसे हीलो थर्मल यूनिट, फोटो थर्मल यूनिट का संचयन अक्टूबर माह में बोई गई फसल में नवम्बर माह में बोयी गई फसल की तुलना में अधिक पाया गया। परिणाम स्वरूप सरसों की उपज तथा तेल प्रतिशतता में वृद्धि दर्ज की गई।

मौसम विविधता की विवेचना :–

कृषि उत्पादन में मौसम की मुख्य भूमिका होती है। कृषि उत्पादन की सफलता सामान्यः मानसून एवं अनुकूल मौसम पर निर्भर करती है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम विविधता में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा अनगिनत तकनीकियों का विकास किया जा रहा है। लेकिन इनकी सफलता असामान्य मौसम में बढ़ोत्तरी की वजह से कम हो रही है। मानसून के देरी से आने तथा साथ ही जल्दी खत्म होने की वजह से फसलों की पैदावार गिर जाती है। किसी भी फसल का कृषि उत्पादन अनुकूल मौसम पर निर्भर करता है। अधिकतर कृषि कार्य मौसम के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं। किसी भी फसल की उपज की गुणवत्ता पर मौसम की विविधता का प्रभाव पड़ता है। फसल की जैविक और भौतिक प्रक्रियाओं पर तापमान का भी बहुत प्रभाव पड़ता है।

भारत मे उगायी जाने वाली फसलों के उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का काफी असर पड़ता है क्योंकि फसल के बीजों के अंकुरण से लेकर पकने तक एक उपयुक्त मौसम की जरूरत पड़ती है जो कम से कम एक निश्चित अवधि तक होना चाहिए। यदि अंकुरण के समय उपयुक्त तापमान नहीं मिला तो अंकुरण ठीक से नहीं होता है। फसल पकने के समय भी उच्च तापमान से हानि होती है। इससे दाना बनने की अवधि में कमी आ जाती है परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी आती है साथ ही उत्पादन की गुणवत्ता भी खराब हो जाती है। किसी भी फसल की जैविक और भौतिक प्रक्रिया पर तापमान का प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के तौर पर सरसों को सर्दियों में बोया जाता है। यदि फली तथा बीज बनने के दौरान 2–3 डिग्री सेल्सियम तापमान ज्यादा हो जाता है तो फसल की उपज में महत्वपूर्ण कमी आती है। बुवाई का समय फसल में वनस्पति और प्रजनन चरण की लंबाई को संशोधित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मौसम परिवर्तन के प्रभाव को कम करने हेतु बुवाई के समय में परिवर्तन करना पड़ता है। जिससे फसल के विभिन्न चरणों को भिन्न–भिन्न वातावरण मिल सके। बढ़ोतरी के सभी सूचकांक पत्ती क्षेत्रफल सूचकांक, बायोमास, हरित तत्व सूचकांक नापे गये, चेंपा तथा अन्य बीमारियों का असर भी देखा गया तथा फसल के भिन्न–भिन्न चरणों का अवलोकन किया गया।

मौसम विविधता का सरसों फसल की वृद्धि पर प्रभावः–

पत्ती क्षेत्रफल सूचकांक का बुवाई के बाद अलग–अलग समय पर अवलोकन करने से पता चलता है की सरसों की फसल के लिये लगाई गई किस्मों के उत्पादन पर समय से बुवाई का बहुत गहरा असर पड़ता है। इन अनेकों अध्ययनों से पता चलता है की अक्टूबर माह मे सरसों की पैदावार अच्छी एवं

नवम्बर माह में लगाने से पैदावार 25 से 30 प्रतिशत कम होती है। परन्तु किसान देरी से बोई जाने वाली किस्मों को प्रयोग मे लाकर पैदावार में होने वाले नुकसान में कमी ला सकते है। जलवायु–परिवर्तन द्वारा फसलों के सम्पूर्ण जैव–भार में वृद्धि व दाने तथा बीजों के भार में कमी अर्थात उपज में वृद्धि की जगह कमी होने के आसार अधिक रहते हैं। तापक्रम बढ़ने से गर्म वातावरण में पौधों या फसलों के बढ़वार कि क्रियाएं भी बहुत प्रभावित होती है। फसलों को मिलने वाले प्रकाशकाल में परिवर्तन या उपयुक्त प्रकाशकाल न मिलने से फसलों में वृद्धि व फूलों में नपुंसकता, नरबन्धता व फल विकास से अन्न–भराव जैसी सभी प्रक्रियाएं प्रभावित होने के कारण फसलों के उत्पादन में कमी होने के आसार अधिक रहते है। इसी प्रकार बायोमास में भी देरी से बोयी गई फसल में जल्दी बोयी गई फसल की तुलना में कमी पायी गई।

नवम्बर माह में बोयी जाने वाली फसल के वृद्धि पैरामीटर तथा उपज अक्टूबर माह में बोयी जाने वाली फसल की तुलना में कम पाई गई है। जिससे नवम्बर माह में बोयी जाने वाली फसलों में पैदावार तथा तेल की प्रतिशत मात्रा कम पायी गई। चेंपा का आक्रमण भी नवम्बर माह में बोयी जाने वाली फसल पर अक्टूबर माह में बोयी जाने वाली फसल की तुलना में ज्यादा रहता है। इसका कारण देर से बोयी जाने वाली फसल में पैदावार के लिये जो वातावरण मिला वह चेंपा के लिये उपयुक्त रहता है। साथ ही बीज बनते समय नवम्बर माह में बोयी जाने वाली फसल के लिये तापमान अधिक पाया गया, जो बीज बनने के लिये उपयुक्त नहीं रहता है। इसलिये नवम्बर में बोयी जाने वाली फसल की उपज में 36 से 64 प्रतिशत की कमी पायी गई। अन्य अध्ययनों में भी यह पाया गया कि यदि सरसों की बुवाई में देरी की गई तो सरसों की उपज में महत्वपूर्ण कमी आती है। मौसम विविधता होने से सर्दियों में घने कोहरे और पाले के दौरान सरसों फसल को भी नुकसान होने की आशंका रहती है। पाले से पौधे के अंदर का कोसा रस जमकर बर्फ बन जाता है तथा कोशिका भित्ती फट जाती है, जिससे पौधे झुलस जाते हैं। उनमें निर्जलीकरण होने से पौधे या फसल सूखने लगती और उपज में भारी गिरावट आ जाती है। सरसों की फसल का फूल इस कोहरे और पाले में नष्ट हो जाता है। सरसों में फलियां बनते समय पाले से ज्यादा हानि होती है। कृषि वैज्ञानिकों ने बताया कि कोहरे और पाले से सरसों की फसल बचाने के लिए खेत के पास धुआं करना तथा हल्की सिंचाई करनी चाहिए। इसके अलावा थायोयूरिया 500 लीटर में घोल के छिड़काव करें। इससे ठंड का असर कम होता है और फसल को सुरक्षित रखा जा सकता है। आसमान मे बादल छाऐं रहें, या कभी–कभी बूंदाबांदी हो तो सरसों की फसल में काली चित्ती व चेंपा आदि रोगों के आने की सम्भावना रहती है।

परिणाम :–

फसल की पैदावार पर संचित ऊर्जा इकाइयों का प्रभाव पड़ता है। अक्टूबर माह में बोयी जाने वाली फसल में संचित हीलो थर्मल इकाई, फोटो थर्मल इकाई नवम्बर माह में बोयी गई फसल की तुलना में ज्यादा संचित होती है, जिससे पैदावार (किग्रा/हैक्टेयर) तथा तेल की प्रतिशत मात्रा में बढ़ोत्तरी पायी गई। फसलों की उपज व बढ़ोत्तरी के लिए मौसम (वातावरण) का अनुकूल रहना आवश्यक होता है। इसीलिये पिछले कई सालों में मौसमीय तत्वों का अध्ययन करके हमें किसी भी फसल की उपयुक्त किस्म की बुवाई का उपयुक्त समय ज्ञात करना चाहिए, जिससे हम अधिक पैदावार प्राप्त कर सकते हैं। मौसम की विविधता को ध्यान में रखते हुये सरसों की उन्नत किस्मों को प्रयोग में लाकर अच्छा उत्पादन ले सकते हैं।

उन्नत किस्मों का चयन

सरसों की किस्में	उपज किग्रा./है.	तेल की मात्रा (प्रतिशत)	अवधि (दिन)	अनुशंसित राज्य/क्षेत्र/स्थितियां
डी.आर.एम.आर. 1165–40	2200–2600	40.0–42.5	133–151	राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब जम्मू और कश्मीर
डी.आर.एम.आर. 150–35	1828–1850	39.6–40.0	86–140	बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, उडीसा, असम, छत्तीसगढ़, मणीपुर, राजस्थान

डी.आर.एम.आर.आई.जे. –31 (गिरिराज)	2225–2750	39.0–42.6	137–153	दिल्ली, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, पंजाब और राजस्थान के कुछ हिस्से
एन.आर.सी.डी.आर.–601	1939–2626	38.7–41.6	137–151	दिल्ली, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, पंजाब, राजस्थान
एन.आर.सी.एच.बी.–506 संकर	1550–2542	38.6–42.5	127–148	राजस्थान और उत्तर प्रदेश
एन.आर.सी.वाई.एस. –05–02 (पीली सरसों)	1239–1715	38.2–46.5	94–181	देश के पीले सरसों उत्पादक क्षेत्र
एन.आर.सी.डी.आर.–2	1951–2626	36.5–42.5	131–156	दिल्ली, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, पंजाब, राजस्थान
एन.आर.सी.एच.बी.–101	1382–1491	35.0–42.0	120–125	मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड और पूर्वी राजस्थान के हिस्से
आर.जी.एन.–145	1448–1640	35.0–39.0	121–141	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू और कश्मीर, राजस्थान
एन.आर.सी.बी.एच.–101	1382–1491	34.6–42.1	105–135	मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, राजस्थान, बिहार, जम्मू और कश्मीर, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, असम, छत्तीसगढ़, मणिपुर
सी.एस. 56 (सी.एस. –234–2)	1170–1423	34.2–38.0	113–147	हरियाणा, पंजाब और राजस्थान के कुछ हिस्से
सताब्दी (ए.सी.एन.–9)	468–1291	32.0–40.0	90–105	महाराष्ट्र
पूसा मस्टर्ड 26 (एन.पी. जे.–113)	1481–1895	30.0–41.0	123–128	जम्मू और कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश

❑❑❑

खाद्य तेलों में भारत की आत्मनिर्भरता: आवश्यकता और उपाय

नवीन चंद्रा गुप्ता

भा. कृ. अनुप. – राष्ट्रीय पादप जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली

भारतीय रसोई में खाद्य तेल अपरिहार्य है जिसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। परंतु आश्चर्य की बात ये है की अन्य कृषि उत्पादों की तुलना में जो की स्थानीय स्तर पर उत्पादित होते हैं, भारत अपने द्वारा खपत किए जाने वाले अधिकांश तेलों का आयात अन्य देशों से करता है। विविध कृषि– जलवायु परिस्थितियों, प्रचुर भूमि और कृषि पर निर्भर आबादी के बड़े हिस्से के होने के बावजूद भी भारत को खाद्य तेलों का आयात क्यों करना पड़ता है? सरकार के खजाने पर खाद्य तेलों के आयात का कितना बोझ है? खाद्य तेलों के घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए हम क्या कर सकते हैं? इन सभी सवालों के उपयुक्त हल से ही हम खाद्य तेलों में आत्मनिर्भरता सुनिश्चित कर सकते हैं।

खाद्य तेल की वस्तुस्थिति एवं वित्तीय स्थिति विवरण

नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, प्रत्येक भारतीय के पीछे औसतन हर साल 19.5 किलोग्राम खाद्य तेल की खपत होती है जो की पिछले दशक में औसतन 15.8 किलोग्राम थी। यह प्रति वर्ष लगभग 26 मिलियन टन खाद्य तेलों की कुल मांग के बराबर है। तेल की खपत में वृद्धि के स्वास्थ्य प्रभावों और जीवन शैली की बीमारियों के प्रसार पर इसकी भूमिका को परे रख अगर भारत में खाद्य तेलों की मांग–आपूर्ति की स्थिति की जांच करें तो पायेंगे की इन दोनों के बीच का अंतर निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। भारत ने वर्ष 2018–19 के दौरान 25 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर तिलहन की खेती कर 32 मिलियन टन तिलहन का उत्पादन किया, जिसमें सोयाबीन, रेपसीड–सरसों और मूँगफली को मिला दिया जाये तो इनका तिलहन के क्षेत्र में करीब 90% का हिस्सा था।

देश भर में 28% तेल रिकवरी के औसत दर को अगर माने तो 32 मिलियन टन तिलहन से लगभग 8.4 मिलियन टन खाद्य तेल प्राप्त होगा जिससे खाद्य तेलों की कुल घरेलू मांग का केवल 30% के आस पास ही पूरा कर सकता है और यही वजह है कि हमें इसके आयात की आवश्यकता होती है।

भारत ने वर्ष 2019 में लगभग 7,300 करोड़ रुपये के मूल्य को करीब 5 मिलियन टन खाद्य तेलों का आयात किया जो कि कृषि आयात बिल का 40% और देश के कुल आयात बिल का 3% था। खाद्य तेलों के कुल आयात में ताड़ के तेल (पॉम ऑयल) की प्रमुख हिस्सेदारी (62%) है, इसके बाद सोया तेल और सूरजमुखी तेल क्रमशः 21% और 16% के साथ दूसरे और तीसरे स्थान पर है। विगत वर्षों में आयात की जाने वाली वस्तुओं की श्रेणी में सोया और सूरजमुखी तेल की हिस्सेदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। पाम तेल मुख्य रूप से इंडोनेशिया और मलेशिया से आयात किया जाता है जबकि सोया तेल अर्जेंटीना और ब्राजील से। यूक्रेन और अर्जेंटीना भारत के लिए सूरजमुखी के तेल के प्रमुख आपूर्तिकर्ता है।

खाद्य तेलों के लिए अंतर्राष्ट्रीय बाजार पर निर्भरता उपभोक्ताओं और उत्पादकों दोनों को प्रभावित करने वाली होती है और कीमतों में अस्थिरता के साथ–साथ सरकार के खजाने पर एक महत्वपूर्ण बोझ का कारण बनती है। उदाहरण के लिए, इंडोनेशिया और मलेशिया के पाम तेल बागानों में श्रमिकों की कमी, अर्जेंटीना में पड़े सूखे की वजह से सोयाबीन का और यूक्रेन में सूरजमुखी की फसलों का कम उत्पादन तथा चीन द्वारा खाद्य तेलों की अत्यधिक खरीद से खाद्य तेलों की कीमतें घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में काफी प्रभावित हुई। कोरोना महामारी वर्ष के बाद सरकार को खाद्य तेल के घरेलू कीमतों को कम करने के लिए पाम तेल के आयात शुल्क में 10% की कमी करनी पड़ी।

इस संदर्भ में, यह उल्लेखनीय है कि भारत में तिलहन के घरेलू उत्पादन को बढ़ाने हेतु इसके उत्पादकता एवम् क्षेत्रफल में वृद्धि करने की अपार क्षमता है जिससे आयात पर निर्भरता को कम किया जा सकता है जो किसानों के लिये भी लाभप्रद हो सकता है। भारत सरकार भी खाद्य तेल बीजों के घरेलू उत्पादन को बढ़ाने के लिए कई उपाय कर रही है।

उदाहरण के लिए, तिलहन पर प्रौद्योगिकी मिशन और अन्य नीतिगत फैसलों ने भारत में तिलहन के पैदावार को 1986 में मिलने वाले 9 मिलियन टन से बढ़ाकर 2018–19 में 32 मिलियन टन करने में मदद की है, परंतु फिर भी घरेलू मांग को पूरा करने के लिए वर्तमान उपज पर्याप्त नहीं है।

इन जरूरतों के मद्देनज़र घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देने हेतु

कई अन्य पहल, जैसे राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के तहत ऑयल पाम क्षेत्र का विस्तार, तिलहन फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि, तिलहन के लिए बफर स्टॉक का निर्माण, तिलहन फसलों का क्लस्टर प्रदर्शन आदि को सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है जो कि आगे चलकर किसानों और उपभोक्ताओं के लिये हितकर साबित हो सकता है।

उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाकर :–

एक मोटे अनुमान के आधार पर 1.5 टन प्रति हैक्टेयर वास्तविक उपज के साथ 3.6 मिलियन टन अतिरिक्त तेल का उत्पादन कर उपज एवं खपत के अंतर को मिटाया जा सकता है। इसके लिए उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों के साथ उच्च गुणवत्ता वाले बीज, कृषि–रसायनों का उचित उपयोग और बेहतर फसल प्रबंधन को व्यापक पैमाने पर अपनाने की जरूरत होगी। किसानों को अच्छी गुणवत्ता वाले नई तिलहन की किस्मों के बीजों के बारे में जागरूक करने और उन तक उसकी पहुंच प्रदान करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अंतर्गत आनेवाले तिलहन के प्रमुख संस्थान जैसे की भारतीय तिलहन अनुसंधान संस्थान, भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, सरसों अनुसंधान निदेशालय, एवं मूंगफली अनुसंधान निदेशालय के माध्यम से विभिन्न तिलहनी फसलों के उन्नत एवं क्षेत्र–विशेष बीजों के साथ साथ अन्य तकनीकी सहायता भी प्राप्त की जा सकती है। इसके साथ ही इन संस्थानों द्वारा चलायी जा रही तिलहनी फसलों का क्लस्टर प्रदर्शन और अन्य विस्तार गतिविधियों को और बढ़ावा दिया जा सकता है।

तिलहन क्षेत्र का विस्तार :–

फसल कटाई के उपरांत पड़े परती भूमि का उपयोग तिलहन फसलों के लिए उपयोग में लाकर इसके कुल क्षेत्र में विस्तार किया जा सकता है। भारत में लगभग 11.7 लाख हैक्टेयर चावल की कुल परती भूमि बच जाती है जिसका उपयोग कुसुम और सरसों की फसलों की खेती के लिए किया जा सकता है, जिन्हें अधिक पानी की आवश्यकता भी नहीं होती है।

खाद्य तेल के अन्य विकल्पों को अपनाकर :–

चावल की भूसी का तेल जैसे विकल्प शहरी उपभोक्ताओं के बीच लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं, क्योंकि यह हृदय रोगों और मधुमेह प्रकार–2 के जोखिम को कम करने के लिए जाना जाता है। भारत में चावल की भूसी, चावल के कुल उत्पादन का लगभग 8.5% होता है जिसमें लगभग 15% तेल की मात्रा होती है। उपलब्ध चावल की भूसी का उपयोग करके लगभग 2 मिलियन टन खाद्य तेल का उत्पादन किया जा सकता है। इस दिशा में कपास का बीज भी वनस्पति तेल का एक आशाजनक स्रोत है जिसे उपयोग में लाने की जरूरत है। कपास के बीजों से लगभग 1.4 मिलियन टन तेल संवर्धित किया जा सकता है।

खाद्य तेल का एक और आशाजनक गैर–पारंपरिक स्रोत ऑयल पाम्स है। अन्य पारंपरिक तिलहनों की लगभग 1 टन उपज की तुलना में पाम ऑयल प्रति हैक्टेयर 4 से 5 टन खाद्य तेल का उत्पादन करता है। अध्ययनों के अनुसार, भारत में पाम ऑयल के तहत 1.9 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र का विस्तार करने की क्षमता है, जो लगभग 7.6 मिलियन टन अतिरिक्त खाद्य तेल का उत्पादन कर सकता है। हालांकि, ताड़ के तेल को प्राप्त करने में एक लंबी अवधि लगती है, फसल की कटाई भी चुनौती पूर्ण होती है, और इसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है। इस फसल के अंतर्गत क्षेत्र विस्तार हेतु पूर्वोत्तर के राज्यों को अनुकूल पाया गया है और ऑइल मिशन के तहत इसे कार्यान्वित भी किया जा रहा है।

भारत ने हाल के दिनों में आयात को विनियमित करने और उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए मांग–आपूर्ति की स्थिति और घरेलू कीमतों के आधार पर टैरिफ दरों में बहुत बदलाव किये हैं। हालाँकि, यह एक अदूरदर्शी रणनीति है और लंबे समय के लिये, भारत को एक स्थिर व मजबूत आयात–निर्यात नीति को अपनाने की जरूरत होगी। एक स्थिर टैरिफ संरचना के होने से उचित मूल्य सुनिश्चित करने में भी सहायक सिद्ध होगा जिसके कारण खाद्य तिलहनों के घरेलू उत्पादन में बढ़ावा मिलेगा। स्पष्ट दिशा के साथ एक स्थिर और न्याय संगत व्यापार नीति विभिन्न बाजार हितधारकों के लिए स्पष्ट मूल्य संकेत प्रदान करेगी और तिलहन फसलों के घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देगी।

❑❑❑

भारतीय सरसों का स्वास्थ्य में संभावित उपयोग

विजय कमल मीना, रजत चौधरी, सुभाष चंद
भा.कृ.अनुप. – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारतीय या भूरी सरसों, सरसों कुल की महत्वपूर्ण फसल है। दुनियाभर मे इसका सेवन सदियों से किया जाता रहा है। इसकी पत्तियों को सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है, जबकि इसके बीज को मसाले या तेल के स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। प्राचीन यूनान में सरसों का स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रयोग होता था जबकि भारत और चीन में सरसों के बीज का इस्तेमाल कई बीमारियों और विकारों के लिए प्राचीन काल से पारंपरिक चिकित्सा में इस्तेमाल किया जाता रहा है। पिछले चार दशकों में सरसों के सेवन के लाभकारी प्रभाव इसके विशेष घटकों, जैसे ग्लूकोसाइनोलेट्स आदि के कारण इसका प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है।

तिलहन उत्पादन के मामले में सोयाबीन के बाद सरसों भारत में दूसरे स्थान पर है। राया या सरसों में 90% से अधिक क्षेत्र और उत्पादन भारतीय सरसों (*ब्रैसिका जुंसिया*) के अंतर्गत आता है। यह एक द्वि. जीनोमिक, उभय. द्विगुणित (2n=36, AABB) प्रजाति है और मुख्य रूप से यह स्वपरागित है। हालांकि प्राकृतिक क्षेत्र की परिस्थितियों में मधु. मक्खियों गतिविधि के आधार पर 18% तक पर–परागण भी देखा गया है। इसके अलावा 1990 के दशक से विषाक्त और गैर विषैले भारी धातुओं को जमा करने की क्षमता के कारण भारतीय सरसों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। यह फाइटोरेमेडिएशन प्रयोगो के लिए सबसे महत्वपूर्ण पादपो मे से एक बन गया है।

स्वास्थ्य संवर्धन और रोग निवारण के लिए उपयोग की दृष्टि से तथा सदियों से सरसों के बीज भारत में एक प्रसिद्ध और आम तौर पर इस्तेमाल किया जाने वाला मसाला रहा है, हाल ही में यह न केवल भारत में और चीन में बल्कि यूरोप और उत्तरी अमेरिका में भी दवा के रूप में नियोजित किया गया है। इसके बीजों के पारंपरिक और वर्तमान समय के औषधीय अनुप्रयोग तालिका 1 दिए गए हैं।

तालिका 1: *ब्रैसिका जुंसिया* के बीजों के पारंपरिक और वर्तमान औषधीय अनुप्रयोग

लक्षण / रोग	प्रभाव	लगाने की विधि	भौगोलिक क्षेत्र
बाहरी			
ऑब्सेस्सेस (फोड़े)	सूजनरोधी	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	चीन, भारत, उत्तर अमेरिका
पीठ दर्द	एनाल्जेसिक	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	भारत
पैर का दर्द	एनाल्जेसिक	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	भारत
लूम्बेगो	एनाल्जेसिक	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	भारत
गठिया	एनाल्जेसिक	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	चीन, भारत
सांप का काटना	सूजनरोधी	–	–
त्वचा कैंसर	अर्बुदरोधी	–	चीन, भारत
सूजन	सूजनरोधी	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	–
व्रण	सूजनरोधी	–	चीन
आंतरिक			
एनोरेक्सिया	क्षुधावर्धक, पाचक, गैस्ट्रोस्टिमुलेंट	पूरा और पिसा हुआ बीज	भारत
सीने में संक्रमण	उत्तेजक पदार्थ	वनस्पति–तेल (आलिंगन)	भारत
सर्दी	सूजनरोधी, जीवाणुरोधी	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	चीन, भारत
पेचिश	एंटीडिसेंटेरिक	पूरा और पिसा हुआ बीज	भारत

अपच	क्षुधावर्धक, पाचक, गैस्ट्रोस्टिमुलेंट	पूरा और पिसा हुआ बीज	भारत
सूजन	सूजनरोधी	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	
यकृत का बढ़ना	सूजनरोधी	–	भारत
बुखार	ज्वरनाशक	–	–
परजीवी (कवक, कृमि)	परजीवी, कृमिनाशक, कवकनाशी	पूरा और पिसा हुआ बीज	–
न्यूमोनिया	उत्तेजक पदार्थ	सरसों का पेस्ट (पोल्टिस, प्लास्टर)	चीन, भारत
पेट के विकार	पाचन, गैस्ट्रोस्टिमुलेंट, रेचक, उबकाई	पूरा और पिसा हुआ बीज	भारत
पेट दर्द	पाचन, गैस्ट्रोस्टिमुलेंट, रेचक	पूरा और पिसा हुआ बीज	भारत
गले का ट्यूमर	अर्बुदरोधी	–	चीन
गर्भाशय का ट्यूमर	अर्बुदरोधी	–	चीन
कलाई का ट्यूमर	अर्बुदरोधी	–	चीन

भारतीय सरसों (साबुत या चूर्ण) के प्रभाव को समझने के लिए, इसकी रासायनिक संरचना का पता होना आवश्यक है। ब्रैसिका जीनस के पादपों में विशेष सल्फर यौगिक होते हैं, जिनको ग्लूकोसाइनोलेट्स (जैसे, सिनिग्रीन और सिनालबिन) कहा जाता है, जो बहुत महत्वपूर्ण माध्यमिक चयापचयों में से एक है। ये ग्लूकोसाइनोलेट्स तब तक निष्क्रिय रहते हैं, जब तक कि वे पानी या किसी अन्य पदार्थ के साथ प्रतिक्रिया नहीं करते हैं। इस बिंदु पर, वे आइसोथियोसाइनेट्स (ग्लूकोज और पोटैशियम बाइसल्फेट को हाइड्रोलाइज्ड हो जाते है। सरसों के बीज के तेल में मुख्य रूप से इरुसिक, एराकिडिक, ए–लिनोलेनिक, ओलिक, और पामिटिक अम्ल पाये जाते हैं। उपर्युक्त ग्लूकोसाइनोलेट्स, जो आमतौर पर बीजों में उच्चतम सांद्रता में मौजूद होते हैं, कैंसर मुख्यतः सेल एपोप्टोसिस की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अनुसंधानों से पता चला है कि ग्लूकोसाइनोलेट्स के एंजाइमेटिक विघटन उत्पाद के अंतर्गत विषहरण एंजाइमों का प्रेरण और सक्रिय एंजाइमों के निषेध के माध्यम से कैंसर के विकास को नियंत्रित कर सकते हैं। यह न केवल ग्लूकोसाइनोलेट्स और उनके टूटने वाले उत्पाद हैं जिनका कई प्रकार के कैंसर में कीमोप्रोटेक्टिव प्रभाव होता है बल्कि सरसों के बीज मे उपस्थित स्टेरोल भी यह कार्य करते हैं। स्टेरोल्स जो कोलेस्ट्रॉल जैसे अणु होते हैं, उनकी कोलेस्ट्रॉल कम करने की क्षमता के कारण आहार पूरक के रूप में उपयोग किए जाते हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने पेट के कैंसर पर प्लांट स्टेरोल के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया है और कुल फाइटोस्टेरॉल सेवन और गैस्ट्रिक कैंसर के जोखिम के बीच एक मजबूत नकारात्मक संबंध पाया गया। अन्य खाद्य तेलों की तुलना में, राया और सरसों के तेल में हानिकारक संतृप्त वसा अम्ल की मात्रा सबसे कम होती है। इसमें दो आवश्यक वसा अम्ल, लिनोलिक और लिनोलेनिक की पर्याप्त मात्रा भी होती है, जो कई अन्य खाद्य तेलों में अनुपस्थित होते हैं, ए–लिनोलेनिक अम्ल इस्केमिक हृदय रोग का जोखिम कम करता है। कई अनुसंधानों मे *ब्रैसिका जुंसीय* के बीजों का गैर–आनुवंशिक मधुमेह के लिए खाद्य सहायक के रूप में उपयोग प्रस्तावित किया गया है।

प्रतिकूल प्रभाव और प्रतिक्रियाएं :–

राया और सरसों में इरुसिक अम्ल और ग्लूकोसाइनोलेट्स अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। भोजन में इरूसिक अम्ल का उच्च स्तर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। इसके स्वास्थ्य–हानिकारक प्रभावों में हृदय का वसायुक्त अधः पतन (मायोकार्डियल लिपिडोसिस) शामिल है। पशुधन खुराक मे उच्च ग्लूकोसाइनोलेट्स प्रतिकूल प्रभाव प्रदर्शित करते हैं, इसके हानिकारक प्रभावों मे कम फीड सेवन और वृद्धि, जठरांत्र संबंधी जलन, गण्डमाला, एनीमिया, और यकृत और गुर्दे के घाव शामिल हैं इसलिए, राया और सरसों की किस्मों में इन दो घटकों को कम करने की आवश्यकता है।

राया और सरसों की किस्में जो दोनों आवश्यकताओं को पूरा कर रही हैं (कम इरुसिक (<2%) + ग्लूकोसाइनोलेट (<30 माइक्रो मोल/ग्राम वसा रहित केक) उन्हे वेस्टर्न कैनेडियन तिलहन क्रशर एसोसिएशन ने "00" या कैनोला के नाम से पंजीकृत किया है, और दोनों में से किसी एक को कम

करने वाली किस्में यानी कमग्लूकोसाइनोलेट (<30 माइक्रो मोल) या कम इरुसिक एसिड (<2%) को "0" किस्में कहा जाता है।

सरसों तेल की गुणवत्ता में सुधार के प्रयत्न :–

मानव उपभोग के लिए तेल की गुणवत्ता इसकी वसीय अम्ल संरचना से निर्धारित होती है। असंतृप्त वसा अम्ल, विशेष रूप से 16 और 18 कार्बन श्रृंखला के उच्च अनुपात वाले तेल को खाद्य तेल के रूप में मानव उपभोग के लिए उपयुक्त माना जाता है। राई–सरसों का उपयोग भारत में ज्यादातर तिलहन की फसल के रूप में किया जाता है और इसके बीज में 35–45% तेल की मात्रा होती है जिसमें 92–98% वसा अम्ल (C16 & C22) का ट्राईसिलेग्लिसरॉल होता है। सरसों तेल में सबसे कम संतृप्त वसा होता है और इसमें लिनोलिक (C18:2) और लिनोलेनिक (C18: 3) जैसे आवश्यक वसा अम्लों का उच्च अनुपात होता है जो मानव शरीर द्वारा संश्लेषित नहीं होते हैं। लिनोलेनिक अम्ल एक आवश्यक वसा अम्ल है ; हालांकि, इसकी उच्च सांद्रता ऑटो–ऑक्सीकरण के कारण तेल के शेल्फ जीवन को कम कर देती है। इरुसिक अम्ल (C22:1) राई–सरसों में कुल वसा अम्लों का लगभग 50% होता है और मायोकार्डियल चालन में इसकी प्रतिकूल भूमिका और रक्त कोलेस्ट्रॉल के स्तर को बढ़ाने के कारण मानव उपभोग के लिए अवांछनीय है। अन्य खाद्य तिलहन फसलों की तुलना में राई–सरसों में हानिकारक संतृप्त वसा अम्ल का स्तर कम होता है। तेल में इरुसिक अम्ल और ग्लूकोसाइनोलेट्स प्रमुख बाधाएं हैं। इसलिए, ग्लूकोसाइनोलेट्स और इरुसिक एसिड की कम सांद्रता भारतीय सरसों के तेल की गुणवत्ता में सुधार के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक है। यह बताया गया है कि ग्लूकोसीनोलेट्स की आनुवंशिकी जटिल है। भारतीय सरसों में कुल ग्लूकोसाइनोलेट्स का आनुवंशिक नियंत्रण दो प्रमुख जीनों के अंतर्गत बताया गया है, मातृ प्रभावों के साथ एक ही स्थान पर कई योगात्मक एलील, आणविक मानचित्रण जानकारी के आधार पर छह से सात जीन और पांच प्रमुख क्यूटीएल (QTL) शामिल हैं। राई–सरसों की कम इरुसिक (<2%) और ग्लूकोसाइनोलेट्स (<30 मोल/ग्राम डिफैटेड केक) वाली किस्मों को डबल जीरो ("00") कहा जाता है। सिंगल जीरो ("0") शब्द का उपयोग तब किया जाता है जब किस्म में केवल एक कारक या तो कम इरुसिक (<2 %) या ग्लूकोसाइ नोलेट्स (<30 मोल/ग्राम डिफैटेड केक) होता है। इस संदर्भ में पिछले तीन दशकों से भारत में राई–सरसों के तेल की गुणवत्ता में सुधार के लिए कई प्रयास किए गए हैं। भारत में, पहली कम इरुसिक एसिड ("0") किस्म LES & 39 (पूसा करिश्मा) थी, उसके बाद LES & 1 & 27 (पूसा सरसों 21), LET & 18 (पूसा सरसों 24), और LET & 17 (पूसा सरसों 22) थी।) भारतीय सरसों में, जबकि डबल जीरो किस्म पूसा डबल जीरो मस्टर्ड 31 (पीडीजेडएम–1) थी।

ट्रांस वसीय अम्ल का उपयोग करने से स्वास्थ्य पर होने वाले हानिकारक प्रभाव के कारण ट्रांस–फ्री प्राकृतिक वनस्पति तेल में बढ़ती रुचि का नेतृत्व किया। सरसों के तेल के फायदों ने उपभोक्ताओं को इसके घरेलू खाना पकाने में उपयोग के लिए अपनी ओर झुकाया है। गुणवत्ता युक्त सरसों के तेल की मांग और आपूर्ति के बीच बढ़ते अंतर को कम करने की जरूरत है। उच्च गुणवत्ता युक्त भारतीय सरसों की किस्मों का निर्माण आई.सी.ए.आर.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली, भाकृअनुप– सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर एवं अन्य राजकीय संस्थानों द्वारा किया जा रहा है।

❑❑❑

विश्व में पराजीनी फसलों की बढ़ती स्वीकार्यता

प्रशान्त यादव[1], सुषमा यादव[1], अनुराग मिश्रा[2]

[1] भा.कृ.अनुप.– सरसों अनुसंधान निदेशालय, सेवर, भरतपुर

[2] भा.कृ.अनुप.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा विश्व की जनसंख्या को भुखमरी और कुपोषण से बचाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान की चुनौतियों जैसेः बढ़ती जनसँख्या, प्राकृतिक संसाधनों का क्षय तथा जलवायु परिवर्तन को देखते हुए भविष्य में विशिष्ट गुणों से युक्त जैव–संवर्धित किस्मों का विकास करने की आवश्यकता है। पराजीनी तकनीक द्वारा इस दिशा में कई ठोस कदम उठाये जा रहे हैं और विभिन्न फसलों की उन्नत किस्मों का विकास किया जा रहा है।

कृषि का मानव जीवन में विशेष महत्व है क्योंकि कृषि से ही मनुष्य को भोजन, आवास, ईंधन एवं अन्य दैनिक जरूरत की वस्तुएँ प्राप्त होती है। हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है और कृषि उत्पादन के सन्दर्भ में हम लगभग आत्म–निर्भर हैं, किन्तु निरन्तर बढ़ती जनसँख्या एवं जलवायु परिवर्तन के संभावित खतरों के कारण भविष्य में कृषि उत्पादन को बनाए रखना बहुत चुनौतीपूर्ण होगा। जिसके कारण भारत ही नहीं अपितु संसार के कृषि वैज्ञानिक चिंतित हैं। हमारे देश में कृषि भूमि के विस्तार की संभावनाएं भी न्यूमतन है। अतः भविष्य में अपनी बढ़ती आबादी को स्वास्थ्यवर्धक भोजन उपलब्ध कराना हमारे सामने एक बड़ी चुनौती है।

इन परिस्थितियों में खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने में पराजीनी (ट्रांसजेनिक) तकनीक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। पराजीनी पौधों से तात्पर्य ऐसे पौधों से है जिसमे उनके पूरे जीन–समूह (जीनोम) में एक या अधिक जीन किसी दुसरे जीव से जैव–प्रौद्योगिकी द्वारा स्थानांतरित किये जाते हैं। जींस ही आनुवंशिकी की इकाई होते हैं तथा पौधों को विशिष्ट गुण प्रदान करते हैं। अतः किसी विशेष गुण वाले जीन को हम किसी भी जीव से जैवप्रौद्योगिकी की सहायता से फसल पौधों में स्थानांतरित कर उन्नत पराजीनी फसलें तैयार कर सकते हैं। पारम्परिक प्रजनन विधि में किसी फसल विशेष के लिए उपलब्ध जनन–द्रव्य से ही लाभदायक जीनों को परम्परागत संकरण विधि द्वारा एक साथ लाकर उन्नत प्रजातियाँ विकसित की जाती रही है। किन्तु लगभग एक शताब्दी से वैज्ञानिकों द्वारा लगातार उपलब्ध जनन–द्रव्य से लाभदायक जीनों का दोहन करने के कारण अब जनन–द्रव्य संतृप्त होने की ओर अग्रसर है। ऐसी परिस्थिति में उत्परिवर्तन ही नई प्रजाति विकसित करने की एक–मात्र विधि उपलब्ध होगी।

किन्तु, सौभाग्य से पिछले लगभग चार दशकों से हो रही खोजों एवं आविष्कारों के कारण, आणविक जैव–प्रौद्योगिकी की सहायता से हमने किसी भी प्राणी के लाभदायक जींस को फसलों में स्थानांतरित करने की विधि विकसित कर ली है, जिससे हम फसल पौधों को मनचाहा रूप दे सकते हैं। जैव प्रौद्योगिकी द्वारा किसी भी जीव से लाभदायक जीनों को दूसरे जीव/पौधे के जीनोम में स्थानांतरित करने की प्रक्रिया पराजीनी तकनीक कहलाती है। इस विधि द्वारा विकसित जीव पराजीनी जीव कहलाते हैं। आणुविक जीव विज्ञानं एवं आनुवंशिक अभियांत्रिकी के क्षेत्र में हो रहे नित–नये अविष्कारों के कारण ही पराजीनी तकनीक का विकास संभव हो पाया है। लगभग तीन दशकों से विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए पराजीनी फसलों का विकास किया जा रहा है। आज पराजीनी फसलों की खेती कई देशों में बड़े पैमाने पर की जा रही है।

बी टी कपास के विकास की कहानी पराजीनी फसलों को समझने के लिए एक उत्तम उदहारण है। कपास की पारम्परिक प्रजातियों के पौधों पर कीट बहुतायत में हानि पहुँचाते हैं जिनसे बचाव हेतु कीटनाशकों का बार–बार छिडकांव करना पड़ता है। किन्तु, जैव–प्रौद्योगिकी की मदद से एक जीवाणु *बैसिलस थुरिंजिएंसिस* का एक जीन (जो की प्राकृतिक कीटनाशक बनाता है) को कपास में स्थानांतरित कर दिया गया जिससे कपास के पराजीनी पौधों में ये प्राकृतिक कीटनाशक बनने लगता है जो की फसल को हानिकारक कीटों से सुरक्षा प्रदान करता है। इस पराजीनी कपास को बीटी–कपास के नाम से जाना जाता है। बी टी कपास प्रजाति प्राकृतिक कीटनाशक उत्पन्न करती है जिससे इसमें रासायनिक कीटनाशकों का छिड़काव न्यूनतम करना पड़ता है। ऐसी फसलें ही जिनमें जैवप्रौद्योगिकी की सहायता से किसी दूसरे जीव का जीन पौधों में स्थानांतरित किया जाता है, पराजीनी फसलें कहलाती है। वर्तमान समय में पराजीनी

तकनीक द्वारा विकसित बीटी–कपास देश में कपास उत्पादन के कीर्तिमान स्थापित कर रही है। पराजीनी तकनीक द्वारा कई फसलों की उन्नत किस्में तैयार की गयी है तथा दुनियाभर में उगाई जा रही है। जैसे पराजीनी मक्का, सोयाबीन, कपास, कैनोला, गोभी, सरसों, पपीता और बैंगन इत्यादि।

पराजीनी तकनीक की सहायता से हम फसल पौधों में वांछित गुणों को प्रकृति में उपस्थित अन्य दूसरे जीवों से गैर–परम्परागत तरीकों द्वारा स्थानांतरित करते हैं। इस प्रकार विभिन्न वांछित गुणों (जैसेः सुखारोधी, लवणतारोधी, विभिन्न बीमारियों के लिए प्रतिरोधी) को फसल पौधों के उपलब्ध जनन–द्रव्य से परे जाकर प्रकृति में उपस्थित दूसरे जीवों (पादप, जन्तु, जीवाणु आदि) से स्थानांतरित करके उन्नत किस्में विकसित की जाती है। पराजीनी फसलें खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, कृषि संवहनीयता तथा जलवायु परिवर्तन का समाधान इस प्रकार करती हैं।

फसल उत्पादकता बढ़ाकर : विभिन्न जैविक व अजैविक कारकों के लिए प्रतिरोधी किस्में अधिक उपज देती हैं।

जैव–विविधता बनाये रखकर : बढ़ती उत्पादकता के कारण खेती योग्य भूमि की आवश्यकता में कमी, अर्थात जंगलों की कटाई में कमी।

सुरक्षित वातावरण : कीट प्रतिरोधी फसलों ने बीते वर्षों में लाखों कुन्टल कीटनाशकों के छिड़काव से बचाया है। कीटनाशकों के प्रयोग में विश्वभर में 8.3 प्रतिशत की कमी आई है। इसके साथ ही कॉर्बन उत्सर्जन में भी कमी देखी गयी है।

किसानों की संमृद्धि का कारण : विकासशील देशों के ज्यादातर छोटे व मझोले किसान दुनियाभर में पराजीनी फसलें उगाकर अधिक लाभ कमा रहे हैं।

पराजीनी तकनीक से होने वाले उपर्युक्त लाभों के साथ ही इस तकनीक से जुड़ी कुछ संभावित समस्याएँ भी हैं। इन संभावित समस्याओं में से ज्यादातर के लिए ठोस प्रमाण का अभाव है, किन्तु सैद्धांतिक रूप से संभव होने के कारण हमें इन्हें गंभीरता से लेने की आवश्यकता है। पराजीनी फसलों से होने वाली संभावित हानियाँ इस प्रकार है।

पराजीनी फसलों की संभावित हानियाँ :–

(1) खर–पतवारनाशी रसायनों के प्रतिरोधी जीन्स का पराजीनी फसलों से खर–पतवार में स्थानांतरण द्वारा सुपर खर–पतवार का बन जाना।

(2) पराजीनी कीटनाशी फसलों का लाभदायक एवं अहानिकारक कीटों पर प्रभाव।

(3) पराजीनी फसलों में उपस्थित मार्कर जीन्स का मनुष्य एवं प्राकृतिक जीवाणुओं पर प्रभाव।

(4) पराजीनी फसलों का मृदा सूक्ष्म जीवों पर प्रभाव।

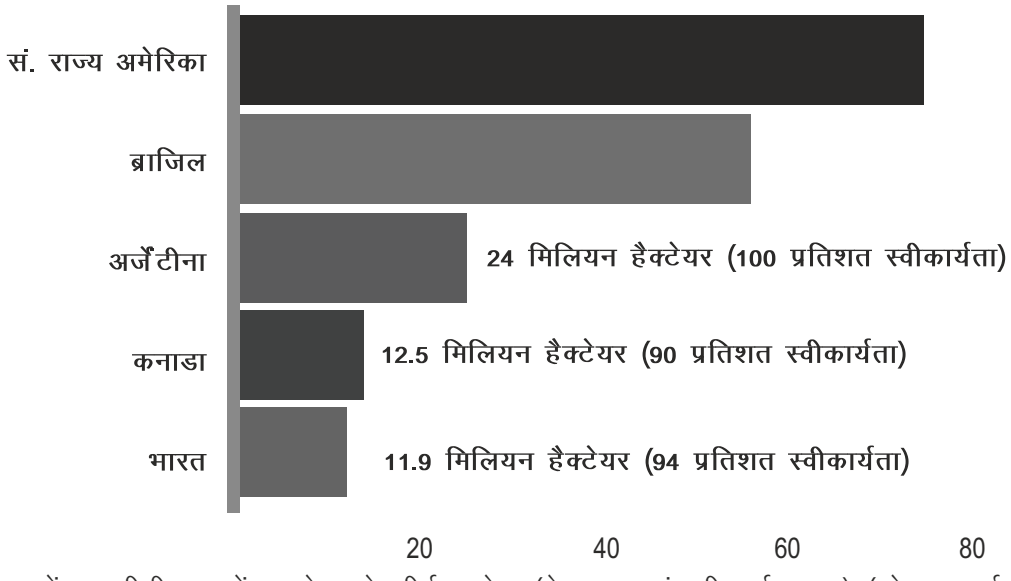

चित्र अ : वर्ष 2019 में पराजीनी फसलें उगने वाले शीर्ष 5 देश (क्षेत्रफल एवं स्वीकार्यता दर) (स्रोत : आई.एस.ए.ए.ए., 2019)

वर्तमान समय में पराजीनी फसलें प्रयोगशाला से निकलकर विश्वभर के लगभग 29 देशों में उगाई जा रही हैं। पराजीनी फसलों का व्यावसायिक उत्पादन वर्ष 1996 में 1.7 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में आरम्भ हुआ था, जो कि आज बढ़कर विश्व भर में लगभग 190.4 मिलियन हैक्टेयर तक पहुँच गया है। पराजीनी फसलों के क्षेत्रफल का विश्व भर में बढ़ना तथा पराजीनी फसलों को उगाने वाले देशों की सूची का बढ़ना पराजीनी फसलों की लोकप्रियता और सफलता को दर्शाता है। भारत में वर्ष 2002 में पराजीनी फसल बी टी कपास का उत्पदान, बी टी कपास की तीन प्रजातियों के साथ आरम्भ हुआ जिससे कपास उत्पादन में 31 प्रतिशत की वृद्धि हुई है तथा कीटनाशकों के प्रयोग में 39 प्रतिशत की कमी आई है। हाल ही में वर्ष 2014 में बांग्लादेश ने बीटी बैंगन का व्यावसायिक उत्पादन शुरू किया है जो कि फल एवं तना बेधक कीट से सुरक्षा प्रदान करता है। बी टी बैंगन को उगाने से बैंगन उत्पादन में प्रयोग होने वाले हानिकारक रसायनों के प्रयोग में कमी आएगी तथा पर्यावरण को होने वाले नुकसान से भी बचाया जा सकेगा। बांग्लादेश ने बी टी बैंगन की कुल चार प्रजातियों का उत्पादन 2 हैक्टेयर भूमि पर 20 किसानों द्वारा शुरू किया है।

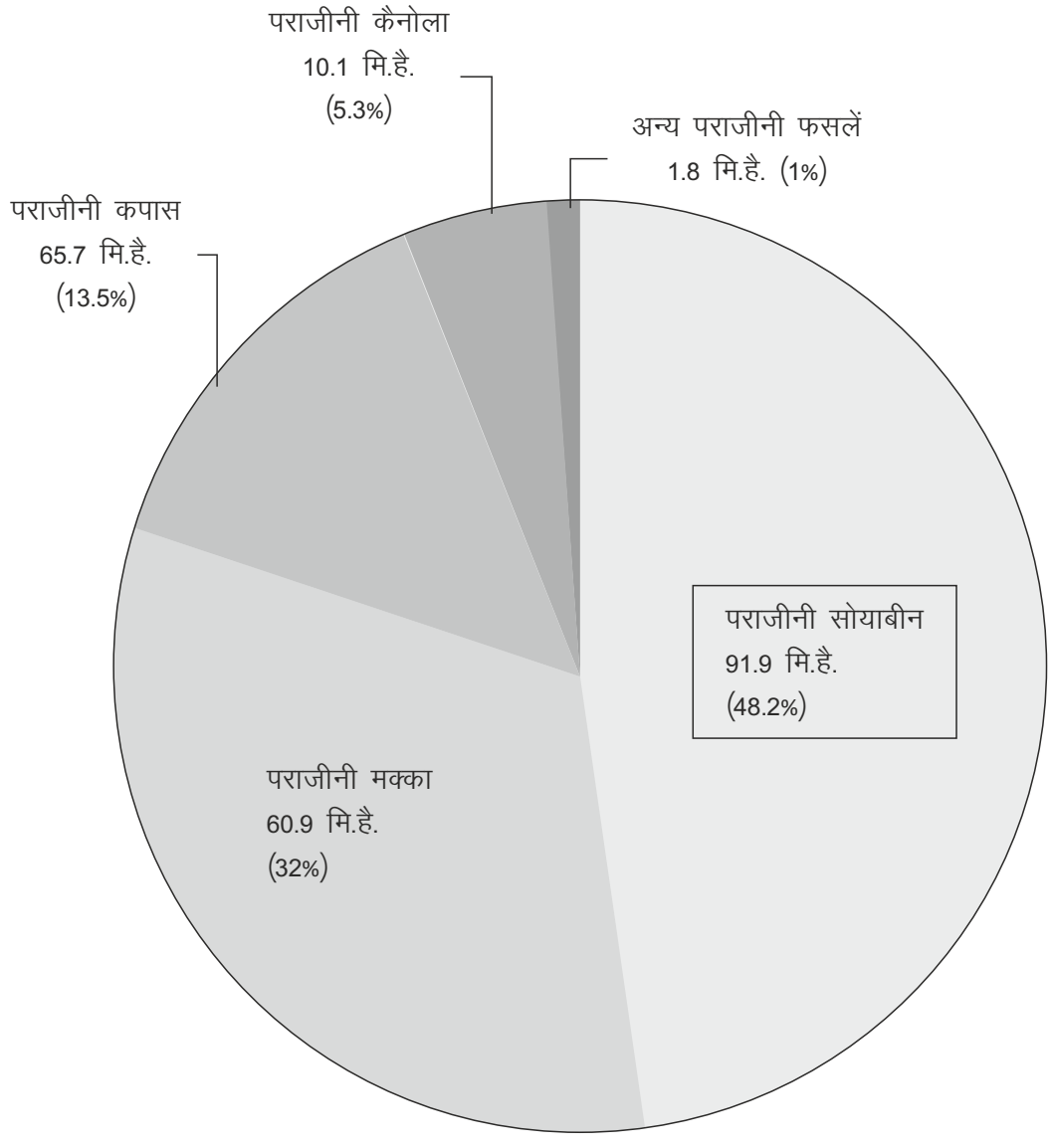

चित्र ब: वर्ष 2019 में विश्व की प्रमुख पराजीनी फसलें [क्षेत्रफल एवं स्वीकार्यता दर (%)]

सारणी 1 : पराजीनी फसलें उगाने वाले प्रमुख देश और पराजीनी फसलों की सूची (वर्ष 2019)

क्रसं.	देश	क्षेत्रफल (मि.है.)	पराजीनी फसलें
1	सं. रा. अमेरिका	71.5	मक्का, सोयाबीन, कपास, अल्फ़ा–अल्फ़ा, कैनोला, चुकंदर, आलू, पपीता, स्क्वाश और सेब
2	ब्राज़ील	52.8	सोयाबीन, मक्का, कपास और गन्ना
3	अर्जेन्टीना	24.0	सोयाबीन, मक्का, कपास और अल्फ़ा–अल्फ़ा
4	कनाडा	12.5	कैनोला, सोयाबीन, मक्का, चुकंदर, अल्फ़ा–अल्फ़ा और आलू
5	भारत	11.9	कपास
6	पराग्वे	4.1	सोयाबीन, मक्का और कपास
7	चीन	3.2	कपास और पपीता
8	दक्षिण अफ्रीका	2.7	मक्का, सोयाबीन और कपास
9	पाकिस्तान	2.5	कपास
10	बोलीविया	1.4	सोयाबीन

व्यावसायिक रूप से उत्पादन कर रही पराजीनी फसलों के अलावा कई पराजीनी फसलें अभी प्रयोगशाला स्तर पर ही उगाई जा रही है एवं विभिन्न देशों से व्यावसायिक उत्पादन हेतु अनुमति प्राप्त करने के लिए तैयार है। गोल्डन राईस चावल की ऐसी ही एक पराजीनी फसल है जिसके दाने सामान्य सफ़ेद रंग के बजाय सुनहरे पीले रंग के होते है तथा इसी कारण इसका नाम गोल्डन राईस पड़ा। गोल्डन राईस के दानों का पिला रंग उसमे उपस्थित विटामिन–ए (बीटा–कैरोटीन) की अधिक मात्र के कारण होता है। इस धान की प्रजाति में एक जीन डैफ़ोडिल पौधे से तथा दूसरा जीन इरवीनिया नामक जीवाणु से जैवप्रौद्योगिकी द्वारा स्थानांतरित किया गया है जो धान के भ्रूणपोष में बीटा–कैरोटीन के निर्माण में सहायता करता है। गोल्डन राईस खाने वाले लोगों में विटामिन–ए की कमी से होने वाली रतौंधी नामक आँखों की बीमारी नहीं होती है।

सारणी 2 : प्रमुख पराजीनी फसलें एवं उनकी विशेषताएँ

फसल	विशेषताएँ
टमाटर (फ्लेवरसेवर)	तुड़ाई पश्चात लम्बे समय तक टमाटर ताजे बने रहते हैं
सेब (आर्कटिक एप्पल)	सेब काटने के बाद हवा के संपर्क में आने पर भूरा नहीं होता है
धान (गोल्डन राईस)	प्रचुर मात्रा में विटामिन–ए प्रदान करता है
सोयाबीन (राउंडअप रेडी)	खरपतवारनाशी रसायन ग्लाइफोसेट के लिए प्रतिरोधी
पपीता (सनअप और रैन्बो)	विषाणु जनित पपीते की गोल धब्बे की बीमारी के लिए प्रतिरोधी
कपास (बॉलगार्ड)	कपास के गुलाबी गुल कीट के लिए प्रतिरोधी
चुकन्दर (राउंडअप रेडी)	खरपतवारनाशी रसायन ग्लाइफोसेट के लिए प्रतिरोधी
बैंगन (बी टी ब्रिंजल)	फल एवं तना बेधक कीट के लिए प्रतिरोधी
राई–सरसों (रेपसीड)	खरपतवारनाशी रसायन ग्लाइफोसेट और ग्लुफोसिनोलेट के लिए प्रतिरोधी
मक्का (राउंडअप रेडी)	खरपतवारनाशी रसायन ग्लाइफोसेट के लिए प्रतिरोधी
मक्का (एम–37–डब्लू)	विटामिन–ए, विटामिन–सी और फोलिक अम्ल की प्रचुर मात्रा प्रदान करता है

जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही नई खोजों के कारण पराजीनी फसलों के संभावित खतरों को दूर किया जा रहा है। उदहारण के लिए पराजीन को पौधों की कोशिका में उपस्थित नाभिक की जगह हरितलवक में स्थानांतरित करके सुपर खर–पतवार के बनने की संभावना को समाप्त किया जा सका है। इसी प्रकार बी टी फसलों के साथ–साथ रेफुजी फसल एक पट्टी में लगाकर लाभदायक कीटों को संभावित हानि से बचाया जा सकता है। जहाँ तक पराजीनी फसलों में उपस्थित मार्कर जीनों का सवाल है, तो वर्तमान में कई क्लीन–जीन तकनीक विकसित की जा चुकी है। क्लीन जीन तकनीक का तात्पर्य ऐसी तकनीक से है जिसमें पराजीनी पौधों में केवल पराजीन ही रहे, अर्थात उसमें से विभिन्न उक्तियों द्वारा मार्कर जीन को निकाल दिया जाता है। वर्तमान समय में क्लीन जीन तकनीक द्वारा मार्कर जीन रहित पराजीनी फसलें बनाई जा रही हैं। इसके साथ ही जीनोम एडिटिंग नामक एक नई क्रांतिकारी तकनीक विकसित की जा चुकी है जिससे पराजीन के बिना है उन्नत किस्मों का विकास किया जा सकता है। हमारे देश में जीनोम एडिटिंग पर भी अनुसंधान कार्य शुरु किए जा चुके हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैवप्रौद्योगिकी की सहयता से विकसित पराजीनी फसलों के लाभ कहीं ज्यादा है। पराजीनी फसलों के प्रयोग से कृषि उत्पादन तथा किसानों की कुल आय में बढ़ोतरी होगी, पर्यावरण संतुलित बना रहेगा तथा बढ़ती जनसँख्या के लिए भविष्य में खाद्य आपूर्ति सुनिश्चित की जा सकेगी।

इस प्रकार, जैवप्रौद्योगिकी द्वारा विकसित पराजीनी फसलों के विकास से विश्व की उपलब्ध कुल योग्य भूमि को बढ़ाये बिना ही दुनिया की बढ़ती जनसँख्या के लिए भोजन और पोषण का प्रबंधन किया जा सकेगा। जिससे खेती के लिए और अधिक जंगलों को काटने की आवश्यकता नहीं रहेगी। इससे पर्यावरण संतुलन व जैवविविधता के संरक्षण को भी बल मिलेगा।

❑❑❑

अनुसूचित जाति उप–योजना, भरतपुर की सफलता की कहानी

मोहन लाल दौतानियॉ, मुरलीधर मीणा, अशोक कुमार शर्मा

भा.कृ.अनुप.– सरसों अनुसंधान संस्थान, सेवर, भरतपुर

भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर द्वारा 2018–19 से अनुसूचित जाति उप–योजना का संचालन किया जा रहा है इस योजना के लिए संस्थान, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा निर्देशित दिशा–निर्देशों के अनुसार विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। संस्थान की टीम ने अनुसूचित जाति क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया तथा कृषि से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों की रूपरेखा भी तैयार की है।

भारत विविधताओं का देश है। इस विभिन्नता की झलक कृषि से लेकर जलवायु मृदा एवं फसल में भी देखने को मिलती है। कृषि क्षेत्रों में तापमान का अधिक होना, वर्षा का कम होना, मृदा कार्बन का स्तर कम होना तथा जल वाष्पीकरण की दर अधिक होने के कारण फसलों में सिंचाई कम समय अन्तराल पर देने की अनुशंसा की जाती है इसी के साथ–साथ भूमि जल में क्षारीय कणों की अधिकता के कारण फसल पर प्रतिकूल प्रभाव एवं मृदा की गुणवत्ता में भी ह्रास देखा गया है। राष्ट्रीय स्तर पर राई–सरसों की पैदावार को बढ़ाने में भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर कटिबद्ध है। जो देश के विभिन्न स्थानों पर राई–सरसों समन्वित कार्यक्रम के तहत मृदा व जलवायु के अनुसार किस्मों का विकास करता है तथा पादप पोषक तत्व उपयोग दक्षता, जल उपयोग दक्षता, समन्वित रोग व कीट प्रबन्धन, पादप प्रजनन द्वारा विभिन्नता पैदा करना इत्यादि शामिल है। इन तकनीकों को किसानों तक पहुचाने के लिए संस्थान समय –समय पर किसान–वैज्ञानिक संवाद, प्रक्षेत्र दिवस, किसान एवं प्रसार कर्मियों का प्रशिक्षण, सरसों विज्ञान मेला एवं प्रदर्शनियों को आयोजित करता रहता है। अनुसूचित जाति उप –योजना के द्वारा कृषि से सम्बन्धित विभिन्न आयामों पर विगत वर्षों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। राई–सरसों की उन्नत खेती के लिए उन्नत बीज, उर्वरक प्रबन्धन, वर्मी– कम्पोस्टिंग, मृदा परीक्षण, जल प्रबन्धन, जुताई की तकनीकें, कार्बन प्रबन्धन, कीट एवं रोग प्रबन्धन इत्यादि पर विस्तृत प्रशिक्षण आयोजित किया गया। इसके अलावा फार्म की आय कैसे बढ़ाये तथा महिलाओं को आत्म–निर्भर बनाने के लिए सिलाई एवं अन्य कुटीर उद्योगों के लिए भी प्रशिक्षण दिया गया।

तलिका 1 : प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विवरण।

वर्ष	प्रशिक्षण संख्या	स्थान	लाभार्थी किसान	वितरित की गई वस्तुएँ
2018–19	04	राजस्थान	204	प्रशिक्षण किट, साहित्य, दरांती, स्प्रेयर, सरसों के बीज (30 क्विंटल)
2019–20	11	राजस्थान	543	प्रशिक्षण किट, साहित्य, उर्वरक, दरांती, स्प्रेयर, सरसों के बीज (11.88 क्विंटल)
2020–21	15	राजस्थान पश्चिम बंगाल	1932	प्रशिक्षण किट, साहित्य, उर्वरक, दरांती, स्प्रेयर, सौर मशाल, कंबल, सिलाई मशीन, सरसों के बीज (81 क्विंटल)
2021–22	24	राजस्थान पश्चिम बंगाल उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश	3025	प्रशिक्षण किट, साहित्य, उर्वरक, दरांती, स्प्रेयर, सौर मशाल, कंबल, सिलाई मशीन, पानी मोटर, विनोइंगफैन, सरसों के बीज (120.19 क्विंटल)

इन प्रशिक्षणों को आयोजित करने के लिए भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय भरतपुर के अलावा कृषि विज्ञान केन्द्र बान्सूर, कृषि विज्ञान केन्द्र कुम्हेर, कृषि विज्ञान केन्द्र धौलपुर, कृषि विज्ञान केन्द्र करौली, कृषि विज्ञान केन्द्र सवाईमाधोपुर, लूपिन फाउण्डेशन भरतपुर, मन्जेरी फाउण्डेशन धौलपुर पर भी विभिन्न प्रशिक्षणों का आयोजन किया गया। इसके अलावा क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मालदा (पश्चिम बंगाल) जो कि केन्द्रीय उपोष्ण कटिबंधीय बागवानी संस्थान, लखनऊ के अन्तर्गत है, द्वारा राई–सरसों की खेती को कम पानी वाले क्षेत्रों में बढ़ाने के लिए प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के तहत अनुसूचित जाति किसानों को उन्नत बीज एवं उर्वरक वितरण तथा तकनीकी प्रशिक्षण दिया गया।

चित्र 1 : प्रशिक्षण के छाया चित्र।

राई–सरसों को मालदा (पश्चिम बंगााल) में आय का स्रोत बनाने के लिए क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मालदा में लघु तेल निकालने का संयन्त्र भी लगाया है जिससे कि लघु व मध्यम किसान राई–सरसों को अपनी आजीविका का साधन बना सकें। इस कार्य के कारण 900 किसानों को उपज संगठन बनाकर इसे आजिविका का साधन बना चुके हैं। इस संगठन द्वारा आज कई बड़े किराने की दुकानों पर सरसों का तेल मिलने लगा है तथा आज इस शुद्ध तेल की माँग कई गुना बढ़ गई है।

चित्र 2: सरसों तेल बिक्री के लिए मालदा (पश्चिम बंगाल) के मॉल में

इस प्रकार के प्रयास को देश के कई अन्य क्षेत्रों में भी भाकृअनुप– सरसों अनुसंधान निदेशालय भरतपुर द्वारा लागु करने की कोशिश जारी है। वर्ष 2020–21 के दौरान राई–सरसों की उन्नत तकनीकों को उत्तर प्रदेश व मध्यप्रदेश में बढ़ावा देने के लिए रानी लक्ष्मी बाई केन्दीय कृषि विश्वविधालय, झाँसी के सहयोग से अनुसूचित जाति उप–योजना के तहत कई कार्यक्रम आयोजित किये गये। सरसों की नवीन किस्मों का किसानों के खेतों पर प्रदर्शन किया गया तथा विभिन्न कृषि आयामों पर प्रशिक्षण आयोजित किये गये। इस कार्यक्रमों के तहत किसानों की आमदनी में बढ़ोत्तरी हुई है तथा संस्थान की उन्नत किस्मों के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इसी का परिणाम है कि संस्थान में उन्नत बीज खरीदने वाले किसानों की संख्या में बढोत्तरी हुई है। संस्थान द्वारा अनुसूचित जाति उप–योजना के तहत किये जा रहे विभिन्न प्रयासों की सराहना सभी ओर की जा रही है।

अनुसूचित जाति उप योजन कार्यक्रमों द्वारा निम्न क्षेत्रों में प्रगति हुईः

- किसान वैज्ञानिक तरीकों से खेती करने के लिए प्रोत्साहित हुए।
- फार्म की आय में बढ़ोतरी तथा लागत में कमी आई।
- विभिन्न प्रशिक्षणों के माध्यम से कृषि, सामाजिक पहलूओं के प्रति दृष्टिकोण में विकास हुआ।
- सरकारी योजनाओं के बारे में जानकारी आसानी से आमजन तक पहुंचाई गई।,
- कम लागत पर आत्म निर्भरता के कृषि अधारित छोटे कार्यों (वर्मी कम्पोस्टिंग, मृदा परीक्षण प्रयोगशाला, गुणवत्ता बीज उत्पादन, मशरूम की खेती इत्यादि) के प्रति किसानों का लगाव बढ़ा।
- राई–सरसों की नवीन किस्मों तथा तकनीकों के बारे में किसानों में जागरूकता बढ़ी।
- लघु कृषि उपकरणों का वितरण।

इस योजना के तहत लगभग 1100 किसानों के खेतों पर राई–सरसों की उन्नत प्रदर्शन जिसके तहत गुणवत्ता बीज, उर्वरक एंव लघु कृषि यन्त्र किसानों को वितरित किये गये। इसके अलावा किसानों को दराती, स्प्रेयर, कम्बल, सिलाई मशीन, सोलर लालटेन, पानी की मोटर, खेती में उपयोगी पंखा, बैग तथा विभिन्न कृषि के आयामों से सम्बन्धित उपयोगी पाठ्य सामग्री प्रदान की गई। संस्थान की ओर से केन्द्रीय बकरी अनुसंधान केन्द्र, मथुरा पर किसानों को उन्नत तरीके से बकरी पालन पर प्रशिक्षण दिया गया जिसके उपरान्त कई– किसानों ने बकरी पालन को आजीविका का सहारा बनाया है।

❑❑❑

मेटाजिनोमिक्स तकनीक द्वारा मृदा सूक्ष्म जीव समुदायों का अध्ययन

सुषमा यादव, अनुभूति शर्मा, अरुण कुमार
भा.कृ.अनुप.– सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर, राजस्थान

फसलों की अच्छी पैदावार के लिए मृदा की उच्च गुणवत्ता का होना अतिआवश्यक है। मृदा की गुणवत्ता उसमे उपस्थित जैविक एवं अजैविक कारकों के परपस्पर आपसी क्रिया पर निर्भर करती है। मृदा में उपस्थित विभिन्न सूक्षजीवों के समूह को सूक्ष्मजीव समुदाय कहा जाता है और इसके अध्ययन से हम मृदा में पाए जाने वाले पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाकर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। मृदा के सूक्षजीव समुदायों के अध्ययन के लिए उन्हें पृथक मीडिया में संवर्धित किया जाता है तथा उनके आकर–प्रकार एवं अन्य गुणों का अध्ययन किया जाता है। किन्तु इस विधि में केवल उन्ही सूक्षजीवों का अध्ययन कर सकते हैं जिन्हे प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से संवर्धित किया जा सके। वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि अभी मृदा के केवल 10 प्रतिशत सूक्ष्मजीवों को ही कृत्रिम रूप से संवर्धित किया जा सकता है। इसलिए जैव प्रौद्योगिकी की अनूंठी तकनीक मेटाजिनोमिक्स की खोज की गयी है जिसमे मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों को संवर्धित किये बिना ही उनकी खोज एवं उनके गुणों का अध्ययन किया जा सकता है।

जिस प्रकार से मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए संतुलित आहार तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार पौधों को भी भोजन एवं विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। पौधे अपना भोजन प्रायः प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से स्वतः बनाते हैं किन्तु, सूक्ष्म पोषक तत्वों के लिए वे मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों पर निर्भर रहते हैं। पौधे जड़ों द्वारा मृदा से घुलनशील अवस्था में विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों को ग्रहण कर अपना जीवन चक्र सफलता पूर्वक पूरा करते हैं। एक या अधिक सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होने से पौधों की कार्यिकी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे पौधों को अपना जीवन चक्र पूरा करने में बाधा आती है और जिसके फलस्वरूप फसल का उत्पादन कम हो जाता है।

हमारे देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रो में भिन्न–भिन्न प्रकार की मृदा पायी जाती है। प्रत्येक प्रकार की मृदा अपनी संरचना, भौतिक एवं रासायनिक गुणों के आधार पर विशिष्ट प्रकार की होती है. उपरोक्त गुणों के साथ–साथ मृदा का एक प्रमुख घटक उसमे पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव (जीवाणु, कवक एवं अन्य जीव) होते है जिनके कारण मृदा को सजीव माना जाता है। इन्ही सूक्ष्म जीवों के कारण मृदा में विभिन्न प्रकार की जैविक प्रणाली चलती रहती है (उदहारण के लिए कार्बनिक पदार्थों का विघटन), जिसके कारण ही मृदा की उर्वरता साल–दर–साल बनी रहती है। मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की गतिविधियों के बिना मृदा की सतह पर कार्बनिक पदार्थ कूड़े के रूप में इकठ्ठा होते जाएंगे और पौधों के लिए मृदा में पोषक तत्वों की मात्रा धीरे–धीरे घटती जाएगी। अतः जीवाणु मृदा को स्वस्थ बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। जैविक खाद बनाने की विभिन्न विधियों (जैसे की कम्पोस्टिंग, रैपिड कम्पोस्टिंग तथा हरी खाद) में सूक्ष्म जीवों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्रकृति में विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों के चक्रण में भी सूक्ष्म जीवों की महती भूमिका होती है।

मृदा परीक्षण एक महत्वपूर्ण विधि है जिससे हम मृदा में उपस्थित विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपस्थिति एवं मात्रा ज्ञात करते है तथा उसी अनुसार रासयनिक उर्वरकों का समुचित दोहन करते हैं। किन्तु मृदा जीवित सूक्ष्म प्राणियों तथा विभिन्न कवकों आदि से भी मिलकर बनी होती है। अतः मृदा के केवल भौतिक गुणों एवं रासायनिक संघटन का परीक्षण करके हमें इसके सम्पूर्ण व्यवहार का पता नहीं चल पाता है। इसलिए वैज्ञानिकों ने मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों का परीक्षण करने की कई विधियां विकसित की हैं, जिनमे मेटाजिनोमिक विश्लेषण एक नई एवं अनोखी तकनीक है। मृदा एवं अन्य पारिस्थितिक तंत्रों में उपस्थित सूक्ष्म जीवों के अध्ययन की पुरानी तकनीको में इन स्थानों से एकत्रित नमूनों से विभिन्न संवर्धन तकनीकों द्वारा पहले अलग–अलग सूक्ष्म जीवों को संवर्धित किया जाता है, तत्पश्चात् इन शुद्ध कालोनियों का अध्ययन किया जाता है (सूक्ष्मदर्शी एवं अन्य अभिरंजन विधि द्वारा)। किन्तु ये तकनीक केवल संवर्धित हो सकने वाले जीवों तक ही सीमित रह जाती है तथा हमें मृदा में उपस्थित संपूर्ण जैवविविधता का पता नहीं चल पता है।

सूक्ष्म जीवों को बिना संवर्धित किये, सीधे पर्यावरण में उनके प्राकृतिक आवासों से, आणविक जैव प्रौद्योगिकी तकनीकियों द्वारा अध्ययन को मेटाजिनोमिक्स कहते हैं। पर्यावरण में उपस्थित सूक्ष्म जीवों के जटिल मिश्रण में से

विभिन्न जातियों के समूहों का अध्ययन डीएनए (डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड) अनुक्रमण द्वारा सम्भव हो सका है। इस तकनीक में किसी एक जाति विशेष को उसके जटिल प्राकृतिक समुदाय से संवर्धन तकनीक द्वारा शुद्ध संवर्धन अवस्था में लाने की आवश्यकता नहीं होती है, जिससे समय तथा श्रम की बचत हो जाती है। इस तकनीक द्वारा कई सूक्ष्म जीवों का सामानांतर अध्ययन करना सम्भव है जिससे इस तकनीक की उपयोगिता और बढ़ जाती है।

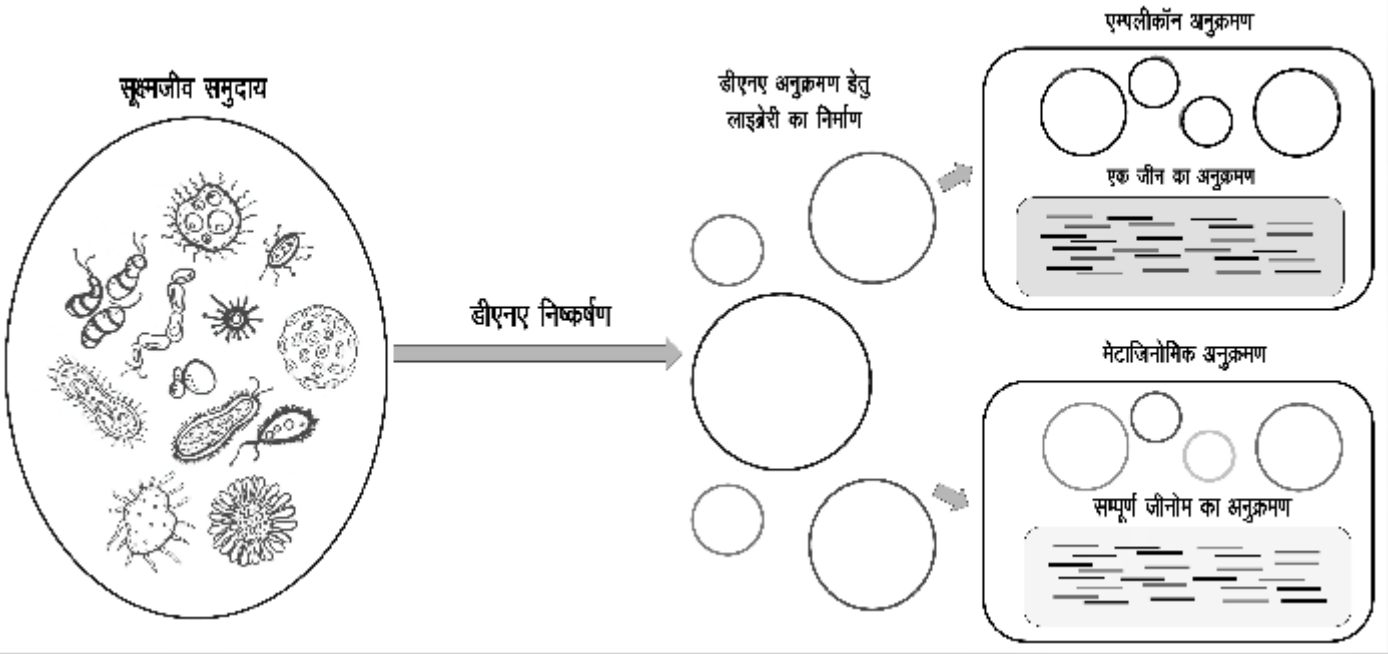

चित्र अः सूक्ष्मजीव समुदाय का मेटाजिनोमिक्स तकनीक द्वारा अध्ययन का प्रतिरूपात्मक चित्रण

मेटाजिनोमिक तकनीक में मृदा तथा विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रो से नमूने लेकर उनसे सीधे डीएनए निकाल कर उसका विश्लेषण किया जाता है। जिसके पश्चात मृदा में उपस्थित ऐसे लाभदायक, हानिकारक एवं अन्य ऐसे अनोखे जीवों का पता चलता है जिनकी कोई पूर्ववत जानकारी हमारे पास नहीं होती है।

डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) किसी भी जीवित प्राणी का आनुवंशिक पदार्थ होता है तथा डीएनए ही आनुवंशिक सूचनाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचाता है। संसार में उपस्थित सभी लैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों का डीएनए अपने आप में अद्वितीय है तथा किसी एक प्रजाति विशेष को हम डीएनए परीक्षण के माध्यम से पहचान सकते हैं। डीएनए की इसी खूबी के कारण ही हम मृदा से डीएनए निकाल कर और उसका परीक्षण करके उसमे उपस्थित विभिन्न जीवाणुओं, कवकों एवं अन्य दूसरे जीवों की प्रजाति विशेष का पता लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि मृदा में नत्रजन स्थिर करने वाले जीवाणु पाए जाते हैं तो ये संकेत है की मृदा में नत्रजन की मात्रा उचित है, अर्थात यह मृदा खेती के लिए उपयुक्त है। इसी प्रकार यदि परीक्षण में पौधों के रोगकारक जीवों की उपस्थिति मिलती है तो इससे संभावित बीमारियों की जानकारी मिलती है। यदि परीक्षण में माइकोराईजा कवक की उपस्थिति मिलती है तो हमे माइकोराईजा से सहजीविता रखने वाली फसलों को लगाना चाहिए (जैसे– मक्का, सोयाबीन आदि)। विभिन्न शोधों से यह पता चला है कि अर्बस्कुलर–माईकोराइजा अपने आश्रित पौधों से सहजीविता स्थापित कर पोषक तत्वों के अन्तर्ग्रहण में सहायक होता है तथा रोगकारक जीवों से सुरक्षा भी प्रदान करता है। इस प्रकार मेटाजीनोमिक्स परीक्षणों से हमें मृदा में उपस्थित संभावित लाभदायक एवं हानिकारक जीवों का पता चलता है। मृदा की परंपरागत जाँच के साथ मेटाजिनोमिक्स से मिलने वाली जानकारी अधिक फसल उत्पादन एवं संपोषणीय खेती में लाभ प्रदान कर सकती है।

मृदा से डीएनए पृथक करने के बाद इसके परीक्षण के लिए डीएनए का अनुक्रमण किया जाता है। आधुनिक अनुक्रमण तकनीकों (नेक्स्ट जेनेरेशन सिक्वेंसिंग) के विकास से अब बहुत कम लागत तथा कम समय में अधिक से अधिक नमूनों का विश्लेषण किया जा सकता है। मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों का पौधों की वृद्धि एवं विकास पर सीधा प्रभाव

पड़ता है। इसमे कई सूक्ष्म जीव पौधों की वृद्धि में सहयोग करते हैं तथा कई जीव पौधों में विभिन्न बीमारियों का कारण बनते हैं। कई सूक्ष्म जीव मृदा में उपस्थित लवणों को पौधों के लिए उपयुक्त घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर देते हैं तो वहीं कई ऐसे भी सूक्ष्म जीव हैं जो मृदा में पौधों के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्वों को अप्राप्य अवस्था में परिवर्तित कर देते हैं। इसीलिए फसलों के लिए उपयुक्त एवं अनुपयुक्त जीवों का अध्ययन करना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

ऑस्ट्रेलिया के साउथ ऑस्ट्रेलियन रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट इंस्टिट्यूट ने मेटाजिनोमिक्स तकनीक के उपयोग से मृदा में फसल पौधों के रोगकारक जीवों को पहचानने की विधि विकसित की है। इस विधि का प्रयोग ऑस्ट्रेलिया में अनाज फसलों के बोने से पूर्व ही खेतों की मिट्टी की जाँच उस फसल के प्रमुख रोगकारक जीवों पता लगाने के लिए की जाती है। यदि रोगकारक जीवों की मात्रा मृदा में अधिक हो तो विभिन्न माध्यमों (मृदा सौरीकरण, रासायनिक उपचार आदि) से मृदा का उपचार किया जाता है अथवा कोई दूसरी वैकल्पिक फसल जिसमे ये बीमारी नहीं लगती है, को खेत में उगाया जाता है।

रोगकारक जीव	बीमारी	प्रभावित फसल
फ्यूजेरियम जाति	क्राउन रॉट (मूल विगलन रोग)	टमाटर
बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना	कॉमन रुट रॉट (जड़विगलन)	गेंहूँ, जौ
पाइथियम	डैम्पिंग ऑफ (आर्द्रगलन)	शाक पौधे
फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टांस	लेट ब्लाइट (पछेती झुलसा रोग)	आलू
राइजोक्टोनिआ सोलेनाई	अर्ली ब्लाइट (अगेती झुलसा रोग)	आलू
प्रोटिलेंकस टोर्नाई	रुट लेजन निमेटोड(मूलविक्षत सूत्र कृमि)	आलू, मूँगफली, मक्का, केला इत्यादि

मृदा में उपस्थित जीवाणु, कवक तथा अन्य सूक्ष्म जीव विभिन्न पोषक तत्वों के पारिस्थितिक–चक्र में समुचित सुचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन सूक्ष्म जीवों की विभिन्न प्रजातियों, उनकी जनसंख्या तथा उनके आपस में ताल–मेल के अध्ययन से हम विभिन्न पोषक तत्वों के पारिस्थितिक–चक्र को भलीभाँति समझ सकते हैं तथा इस ज्ञान का उपयोग करके उन्नत एवं टिकाऊ खेती कर सकते हैं।

मेटाजीनोमिक्स द्वारा हम अद्‌भुत गुणों वाले नए जींस और प्रोटीन की खोज कर सकते हैं। इसके साथ ही ऐसे सूक्ष्मजीवों के जीनोम भी खोजे जा सकते हैं जिनके बारे में अभी तक कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इन खोजों द्वारा हम मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा उनके चक्रीकरण के जैविक–भौतिक एवं रासायनिक तथ्यों को जानकर फसलों की पोषक तत्व उपयोग क्षमता को बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार मेटाजेनोमिक तकनीक द्वारा मृदा के परीक्षण एवं विश्लेषण की सहायता से हम प्रभावशाली फसल प्रबंधन करके उन्नत एवं टिकाऊ खेती से अधिक लाभ कमा सकते हैं। मृदा में रोगकारक जीवों का फसल उगाने से पहले ही पता लगाकर हम संभावित हानि से बच सकते हैं तथा विभिन्न रसायनों का समुचित दोहन करके पर्यावरण को व्यवस्थित बनाये रखने में सहयोग कर सकते हैं।

❑❑❑

Notes

संस्थान में हिन्दी कार्यशाला (फरवरी 19, 2021)

मुख्य अतिथि: श्रीमति सीमा चौपड़ा, निदेशक राजभाषा (भा.कृ.अनुप. नई दिल्ली)

संस्थान के विभिन्न कार्यक्रमों की झलकियाँ

संस्थान के विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम

राजस्थान एवं केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

निदेशालय राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार 2012-13 से सम्मानित